

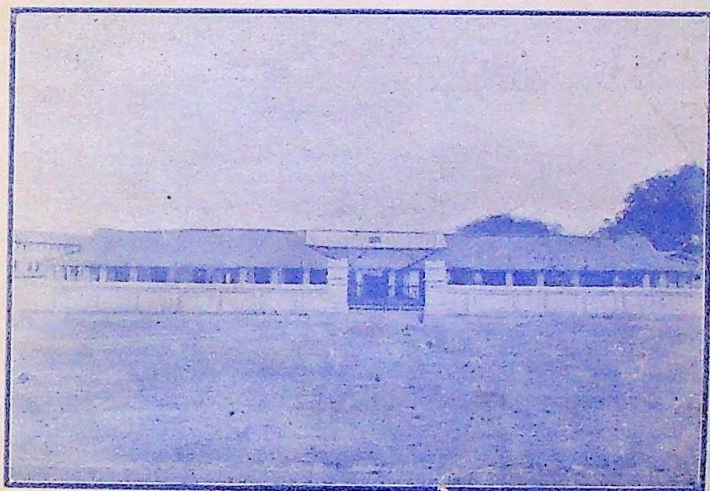
6480.

हिन्दी-साहित्य

Price R. 6/-

का

संक्षिप्त इतिहास



[हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-भवन]

प्रकाशक,

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

प्रयाग

Revised

हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

लेखक

पं० गणेशविहारो मिश्र

Gros viharo
Mutar

पं० श्यामविहारो मिश्र, एम० ए०

पं० शुकदेवविहारो मिश्र, बी० ए०

(मिश्रबन्धु)



प्रकाशक

SPS

809 G 50 H



6480

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

Hindli Shastya Sammelan,
Paryag

प्रथम संस्करण सं० १९७० वि०

द्वितीय संस्करण सं० १९७५ वि०

1974

तृतीय संस्करण]

संवत् १९८१ वि०

[सूर्य]

3768

कृतज्ञता-प्रकाश

—*o*—

श्रीमान् बड़ौदा नरेश महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ महोदय ने बम्बई के सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर जो पांच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी उसी सहायता से सम्मेलन इस "सुलभ-साहित्य-माला" के प्रकाशन का कार्य कर रहा है। इस माला में जिन सुन्दर और मनोरम ग्रन्थ-पुष्पों का ग्रन्थन किया जा रहा है उनकी सुरभि से समस्त हिन्दी-संसार सुवासित हो रहा है। इस माला के द्वारा जो हिन्दी-साहित्य की श्रोत्रुद्धि हो रही है उसका मुख्य श्रेय श्रीमान् बड़ौदा-नरेश महोदय को है। श्रीमान् का यह हिन्दी-प्रेम भारत के अन्य हिन्दी-प्रेमी श्रीमानों के लिए अनुकरणीय है।

निवेदक—

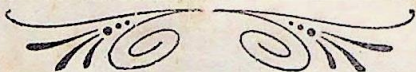
मन्त्री,

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,

प्रयाग



मुद्रक-श्री० सत्यव्रत, अभ्युदय प्रेस, प्रयाग ।



हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

प्रथम संस्करण की भूमिका

प्रायः १३ वर्ष हुए कि जब से हम लोगों का विचार हिन्दी-भाषा के इतिहास लिखने का था। उसी काल से हमने समय-समय पर प्राचीन एवं नवीन कवियों की रचनाओं पर समालोचनाएँ लिखीं। ऐसे ही समालोचना-सम्बन्धी लेखों के आधार पर हम इतिहास-ग्रन्थ की रचना करनेवाले थे। पहले हमारा विचार था कि १०० प्रसिद्ध एवं प्रशंसनीय कवियों की रचनाओं पर समालोचना लिख जाने से इतिहास-ग्रन्थ बन सकेगा। पीछे समालोचना लिखते-लिखते और उत्कृष्ट ग्रन्थ देखते-देखते समझ पड़ा कि यह संख्या संकुचित है और बिना सैकड़ों कवियों के हाल लिखने के इतिहास-ग्रन्थ अच्छा नहीं बन सकता। असाधारण कवियों पर विचार करते-करते धीरे-धीरे साधारण कवियों को भी छोड़ रखना उचित नहीं समझ पड़ा। इस प्रकार प्रायः ३८०० कवियों के कथन "मिश्रबन्धु-विनोद" नामक ग्रन्थ में आगये और उसका आकार बढ़ गया। ग्रन्थ समाप्त होने पर समझ पड़ा कि उस के भारी होने से जो महाशय थोड़े में इतिहास जानना चाहेंगे उन्हें कष्ट होगा। इस विचार से ग्रन्थारम्भ में एक छोटा सा इतिहास लिख देना उचित जान पड़ा। उसी को यहाँ पर स्वच्छन्द रूप में प्रकाशित किया जाता है।

(३)

हिन्दी के खलपत्र महाशयों तथा छोटे विद्यार्थियों को भी लाभ पहुँच सकता है ।

यदि छोटे इतिहास के पढ़ने की ओर पाठकों की रुचि देखेंगे, तो समय पर हम लोग प्रायः २०० पृष्ठों का दूसरा इतिहास-ग्रन्थ भी लिखेंगे । इसी अकार का अँगरेजी भाषा में भी हिन्दी का इतिहास लिखना हमारे विचार में है, परन्तु इन विचारों का सफलीभूत होना भविष्य में अवकाश एवं पाठकों के उत्साह पर निर्भर है ।

सीतापूर

ज्येष्ठ संवत् १९७० वि०

}

विनीत—

“मिश्रबन्धु”

बड़े ग्रन्थ में संक्षिप्त इतिहास और अज्ञात प्रकरणों को छोड़कर छः प्रकरण हैं, जिनके नाम आदि, प्रौढ़ माध्यमिक, पूर्वालङ्कृत, उत्तरालङ्कृत, परिवर्त्तन और वर्तमान प्रकरण हैं। इस छोटे ग्रन्थ में इन्हीं के अनुसार प्रथम छः अध्याय हैं, और एक-एक अध्याय में ग्रन्थ के एक-एक प्रकरण का संक्षिप्त कथन हुआ है। प्रत्येक प्रकरण के थोड़े से मुख्य कवियों के नाम और उनके कुछ गुण-मात्र इस ग्रन्थ में लिखे गये हैं। कवियों की रचनाओं के नाम लिखने में विस्तार-भय हुआ, सो वे छोड़ दिये गये। जो महाशय कुछ विस्तृत वर्णन पढ़ना चाहें, वे मुख्य ग्रन्थ के अवलोकन का कष्ट उठावें। संक्षिप्त ग्रन्थ में हमने प्रथम छः अध्यायों में कोई उदाहरण नहीं लिखा है। इसी से सातवें अध्याय में केवल उदाहरण ही लिखे गये हैं। ये उदाहरण कालक्रमानुसार हैं, परन्तु गद्य के अलग हैं और पद्य के पीछे। इनमें विस्तार-भय से संक्षिप्त इतिहास में भी लिखे हुए सब कवियों के उदाहरण नहीं दिये जा सके, परन्तु फिर भी प्रायः १०० लेखकों के उदाहरण दे दिये गये हैं। सब उदाहरण एकही स्थान पर इसलिये दिये गये कि उनके सहारे समयानुसार भाषा का विकास भी समझ पड़े। यदि यह विकास न दिखलाना होता, तो शायद हम इस ग्रन्थ में उदाहरण न लिखते। इन उदाहरणों में से कुछ मिश्रबन्धुविनोद के उदाहरणों से लिये गये हैं। इसका कारण यह है कि उस समय उन कवियों के ग्रन्थ हमारे पास प्रस्तुत न थे। यह ग्रन्थ मिश्रबन्धुविनोद का पहला प्रकरण है। इस प्रकरण के समाप्त होने पर विचार उठा कि यदि इसे अलग पुस्तकाकार छपवा दें, तो इससे उन पाठकों को भी लाभ पहुँचेगा, जो मिश्रबन्धुविनोद का खरीदना या पढ़ना समयाभाव आदि के कारण पसन्द नहीं करते। इस छोटे ग्रन्थ से

तृतीय संस्करण की भूमिका

इस संक्षिप्त इतिहास का हमारे प्रिय पाठकों ने अच्छा आदर करके हमें अनुगृहीत एवं प्रोत्साहित किया है, जिसके लिए अनेक धन्यवाद। आज इसका तृतीय संस्करण छपने का समय आ गया है और मुख्य ग्रन्थ मिश्रबन्धु-विनोद का भी द्वितीय संस्करण तैयार हो रहा है। फिर भी अपने कथनानुसार हमने इस ग्रन्थ का २०० पृष्ठोंवाला रूप तथा अँगरेज़ी में भी हिन्दी का इतिहास तैयार करने का प्रयत्न नहीं किया, वरन् ये संकल्प भी छोड़ दिये हैं। इस बात पर हम क्षमा के प्रार्थी हैं। ऐसा न करने का कारण यह था कि कई मित्रों ने यह उपदेश दिया कि एक ही ग्रन्थ के विविध रूपों में लिखना एक प्रकार की दूकानदारी है, सो इस परिश्रम के स्थान पर नवीन ग्रन्थ-निर्माण श्रेष्ठतर कार्य है। इस तृतीय संस्करण में जहाँ-तहाँ थोड़ा सा उचित परिवर्तन कर दिया गया है। अधिक हेर-फेर की आवश्यकता नहीं समझ पड़ी।

छतरपूर
सं० १९८१ वि०

}

“मिश्रबन्धु”

द्वितीय संस्करण की भूमिका

आनन्द का विषय है कि इस छोटे ग्रन्थ के द्वितीय संस्करण का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इसके लिए हम सहृदय हिन्दी-पाठकों को धन्यवाद देते हैं—विशेषकर हिन्दी-साहित्य सम्मेलन को, जिसने अपनी मध्यमा-परीक्षा में हमारे “मिश्र-बन्धु-विनोद” को पाठ्य पुस्तकों में रखकर हमें अनुगृहीत किया है।

इस संस्करण में हमने इस छोटी सी पुस्तक का यथा-साध्य संशोधन कर दिया है। विशेष हेर-फेर करने की आवश्यकता हमें प्रतीत नहीं हुई; पर यत्र-तत्र कुछ-कुछ परिवर्तन भी कर दिए गए हैं और इस पुस्तिका को पूर्ण रीति से एक स्वच्छन्द ग्रन्थ बना देने का प्रयत्न किया गया है। इस रूप में यदि यह हिन्दी-रसिकों को कुछ अधिक रुचिकर प्रतीत हुई, तो हम अपने को कृतार्थ समझेंगे।

श्रीप्रयागराज

श्रावण सं० १९७५ वि०

“मिश्रबन्धु”

हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

पहला अध्याय

प्रारम्भिक एवं पूर्वमाध्यमिक हिन्दी

(सं० ५०० वि०—सं० १५६० वि०)

अधिकांश विद्वानों के मतानुसार हिन्दी की उत्पत्ति प्राकृत से हुई, अर्थात् हिन्दी प्राकृत का वर्तमान रूप है; यद्यपि इसकी संस्कृत एवं अन्य अनेक भाषाओं से भी अंग-पुष्टि अवश्य हुई है। इसका विशेष वर्णन आगे होगा। हिन्दी की उत्पत्ति संवत् ५०० वि० के आस-पास मानी गयी है; क्योंकि पुंड अथवा पुण्य नामक हिन्दी का पहला कवि ५५० संवत् में हुआ। इसका न तो कोई ठीक हाल विदित है और न इसकी कविता ही अब हस्तगत होती है। शिवसिंह सेंगर ने इस कवि का हाल जाँच करके लिखा है। इसके द्वारा संस्कृत अलंकारों का हिन्दी दोहों में लिखा जाना प्रसिद्ध है।

देवात् यही काल अँगरेज़ी-साहित्य के भी प्रारम्भ का है, अतः ये दोनों भाषाएँ प्रायः समकालीन हैं। पूँछा जा सकता है कि अँगरेज़ी की अधिक उन्नति क्यों हो गयी और हिन्दी में

श्री १०११-१५

हिन्दी-साहित्य का गति-सूचक फलक

नाम-काल	संवत् तक	बीर	शृङ्गार	शान्ति	कथा	रीति	सुदृढ	गद्य	नाटक	मुख्य भाषा
पूर्व प्रारम्भिक	१३४३	SS	S	XX	S	X	X	0	0	प्राकृत मिश्रित { वज्र, अवधी, राजपूतानी, खड़ी पूर्वी ।
उत्तर प्रारम्भिक	१४४४	S	S	S	S	0	X	XX	0	{ वज्र, अवधी, राजपूतानी, खड़ी पूर्वी ।
पूर्व माध्यमिक	१५६१	XX	X	S	S	0	X	0	S	{ वज्र, अवधी, पूर्वी, पंजाबी
मौढ़ माध्यमिक	१६८१	X	SS	SSS	SS	X	S	S	0	वज्र, अवधी ।
पूर्वालंकृत	१७८९	SS	SSS	S	X	SS	S	X	XX	वज्र अवधी कुछ
उत्तरालंकृत	१८९१	X	SSSS	S	SS	SSS	S	S	0	{ वज्र, अवधी व खड़ी [कुछ]
परिवर्त्तन	१९२५	0	SSS	S	S	S	S	SS	X	वज्र, खड़ी ।
वर्त्तमान	अव तक	S	S	SS	SSS	X	SSS	SSS	SS	खड़ी, वज्र

वैसे उपकारी ग्रन्थ क्यों नहीं बन सके ? इसके अनेक कारण हैं, जिनमें मुख्य ये हैं कि एक तो हमारे यहां सांसारिक पदार्थों को तुच्छ मानकर लोग अधिकांश धार्मिक विषयों ही की ओर विशेषतया प्रवृत्त होते रहे हैं, दूसरे इस देश में प्रेस के अभाव से लोगों के विचार दूर-दूर तक प्रकाशित नहीं हो सकते थे, और तीसरे हम लोगों का बाह्य संसार से बहुत कम सम्पर्क रहा । अतः सांसारिक जातीय होड़ के प्रभाव हम पर कम पड़े । इसी भाँति दया-बाहुल्य के कारण जीवन-निर्वाह-सम्बन्धी होड़ का भी सिक्रा यहाँ बहुत दिनों तक न जमा, सो हम लोगों का तादृश क्या प्रायः बहुत कम भुकाव सांसारिक उन्नतियों की ओर हो सका । चौथी और मुख्य बात यह है कि जिस जाति की सांसारिक उन्नति जैसी होती है, वैसी ही उन्नति उसकी भाषा भी करती है ।

इतिहास का समय-विभाग

हिन्दी-भाषा-लेखन-काल के इस ग्रन्थ में आठ विभाग किये गये हैं, जिनका कथन यहाँ एक फलक द्वारा किया जाता है । इसी फलक से उन समयों की रचना-शैली एवं भाषा का भी कुछ ज्ञान होगा । इसमें लिखे हुए चिह्नों का प्रयोजन यह है:—

०	= प्रायः अभाव
×	= शैथिल्य
××	= महाशैथिल्य
S	= कुछ बल
SS	= अच्छा बल
SSS	= प्राबल्य
SSSS	= बहुत प्राबल्य

मय हिन्दी-अनुवाद का पता लगा, जिसका निर्माण-काल स्पष्ट रूप से संवत् १००० लिखा है। इसका विस्तार प्रायः १२२५ श्लोक (अनुष्टुप छंद) का है। उदाहरण समय अध्याय, पद्य-विभाग में देखिए। इसकी भाषा कुछ नवीन जान पड़ती है; पर सम्भव है कि इसके संवत् १८०० के लिपिवद्ध करनेवाले ने उसमें कुछ हेर-फेर कर दिए हों। यह कविता दोहा-चौपाइयों में है। जान पड़ता है कि कवि मथुरा के आस-पास किसी स्थान का रहनेवाला था।

चन्द बरदाई

महाकवि चन्द बरदाई लाहौर में संवत् ११८३ के आस पास उत्पन्न हुए, जहाँ उस समय सुसल्मानों का राज था, परन्तु बाल्यावस्था से ही अजमेर में जाकर रहने लगे। यहाँ यह पृथ्वीराज के सखा एवं मन्त्री हो गए। जब पृथ्वीराज को उनके नाना अनंगपाल ने दिल्ली का राज दे दिया, तब चन्द दिल्ली में सम्मान-पूर्वक रहने लगे, जहाँ यह पृथ्वीराज के राजकवि एवं उनके तीन मन्त्रियों में हो गए। इन्होंने रासो नामक प्रायः २५०० पृष्ठों का ग्रन्थ पृथ्वीराज की प्रशंसा में रचा, परन्तु अनुमान किया गया है कि उसका थोड़ा सा अन्तिम भाग इनके पुत्र जलहन ने बनाया। रासो में प्रायः सभी रसों के उत्कृष्ट वर्णन हैं, जिन से चन्द की विशाल साहित्य-पटुता भली भाँति प्रकट है। इनकी रचना में सुप्रबन्ध गुण खूब पाया जाता है। चन्द महाशय हमारे यहाँ के चासर हैं। चासर की उत्पत्ति चन्द से २१४ वर्ष पीछे हुई; परन्तु ये दोनों अपनी-अपनी भाषाओं के वास्तविक प्रथम महाकवि हैं। इन दोनों ने प्राचीन भाषा में प्रकृष्ट ग्रन्थ रचे। इन दोनों की रचनाएँ परम मनोहर हैं, और

प्राचीन कवि

संवत् ८६० के लगभग किसी भाट कवि ने खुमान रासा नामक ग्रन्थ महाराजा खुमान की प्रशंसा में रचा और संवत् १००० में भुवाल कवि ने भगवद्गीता का अनुवाद किया । ११३७ वाले कालिंजर के राजा नन्द भी कवि माने गये हैं । मसऊद एवं कुतुबअली ११८० के लगभग दो मुसलमान कवि हुए और ११६१ में साईदान चारण ने समन्तसार ग्रन्थ रचा । अकरम फ़ैज़ ने १२०५ से १२५८ पर्यन्त वर्तमान नामक ग्रन्थ रचा तथा वृत्तरत्नाकर का भाषानुवाद किया । यह कवि जयपुर-नरेश के यहां था । प्रसिद्ध कवि चन्द वरदाई का कविता-काल १२२५ से १२४६ पर्यन्त माना गया है । इस वर्णन से प्रगट है कि चन्द से प्रथम आठ कवियों के जो नाम अब मिलते हैं, उनमें तीन मुसलमान थे । दूसरों की भाषा पर इतना ध्यान देना उस समयवाले मुसलमानों के विद्या-प्रेम एवं उन्नति को प्रकट करता है । आजकल बहुत से मुसलमान लोग भारतीय भाषा केवल उर्दू को कहते हैं, परन्तु जब उर्दू का जन्म भी नहीं हुआ था, तब भी उस समय के मुसलमान लोग उच्चाशय प्रकट करते हुए हिन्दी में कविता करते थे । ये बातें उन्नत और अवनत दशाओं का अच्छा आनुषंगिक ज्ञान देती हैं ।

भुवाल कवि

अब तक हिन्दी का वास्तविक पहला कवि, जिसका कोई ग्रन्थ उपलब्ध होता है, चन्द वरदाई ही प्रसिद्ध था । सन् १६१७ की हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज में, जो हमारे ही निरीक्षण में होता था, भुवाल कृत श्रीमद्भगवद्गीता के पद्य-

की बहेन पृथाकुँवरि से अपना विवाह होने में पृथ्वीराज से जलहन को सहठ माँग लिया था और उसे बे अपने दरबार में ले गये थे। अवश्य ही उस समय में हिन्दी के बहुतेरे कवि हुए होंगे; पर उनके नाम तक अब ऐसे काल-कवलित हो गये हैं कि उनका कहीं पता नहीं लगता।

चन्द के पीछे जलहन कवि ने रासा के अन्तिम भाग को बनाया और ग्रन्थ सुरक्षित रखा। जलहन के पीछेवाले कवियों में भी बहुतों का अब पता भली भाँति नहीं लगता। जलहन की भाषा चन्दीय भाषा के समान है, परन्तु उत्तमता में उसकी कविता चन्द से समानता नहीं कर सकती। कुमारपाल-चरित्र की रचना १३०० के लगभग हुई थी। कुमारपाल अन्हलवाड़े के राजा थे। संवत् १३५४ में नरपति नालह ने बीसलदेव रासा बनाया और १३५५ के लगभग बल्लसिंह ने विजयपाल रासा रचा। संवत् १३५७ में शारङ्गधर कवि ने हम्मीर काव्य, हम्मीर-रासा और शारङ्गधर-पद्धति बनायी। इन चारों कवियों की हिन्दी में अन्तर है। क्रम से हिन्दी भाषा विकासत होते-होते अब नये रूप में होने लगी थी और चन्दीय भाषा से वह पृथक् देख पड़ती है। अतः इन कवियों के साथ प्राचीन हिन्दी का द्वितीय समय आरम्भ होता है। इसी समय अमीर खुसरो से वर्तमान उर्दू-कविता की जड़ पड़ती है। इन्होंने तत्कालीन प्रचलित हिन्दी में कविता की और खड़ीबोली में भी। खड़ीबोली के प्रथम कवि खुसरो ही कहे जा सकते हैं। मुल्ला दाऊद ने १३८५ में नूरक चन्दा की एक प्रेम-कहानी लिखी।

गोरखनाथ

महात्मा गोरखनाथ का रचना-काल १४०७ से आरम्भ होता है। ये महाराज पहले महात्मा थे, जिन्होंने संस्कृत के

११४ हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास । [सं० १२४७ वि०

वर्त्तमान समय के मनुष्य बिना विशेष प्रयत्न के इनकी भाषाएँ समझ नहीं सकते । चन्द ने आकार में चासर की प्रायः दूनी रचना की और उत्तमता में इन दोनों की रचनाएँ प्रायः समान हैं । चासर को जैसे अंगरेज़ लोग अंगरेज़ी कविता का पिता समझते हैं, वैसे ही चन्द जी भी हिन्दी के वास्तविक जन्म-दाता कहे जा सकते हैं ।

अन्य कवि-गण

महोबे का जगनिक चन्द का समकालीन था । कहते हैं कि उसने सबसे पहले “आह्ला” की रचना की, जो अब तक ठौर-ठौर ग्रामों में गाया जाता है । इस समय के आह्ला में जगनिक का शायद एक शब्द भी नहीं मिलता, केवल ढँग उसका है ।

केदार कवि भी प्रायः इसी समय में हुआ और महाराज जयचन्द के पुत्र शिवजी की सभा में बारदरवेणा नामक एक अच्छा कवि हो गया है । इसी समय (संवत् १२४७ वि०) में मोहनलाल द्विज ने पत्तलि नामक एक ग्रंथ रचा, जिसमें बारात के भोजन की विधि तथा सामग्री वर्णित हैं । इसका आकार प्रायः ५० श्लोकों (अनुष्टुप छंद) का है । यह कवि कुम्हेर रियासत भरतपुर का रहनेवाला ब्राह्मण था । इसका पता भी सन् १६१७ के खोज में ही लगा है । उदाहरण के लिए अध्याय सातवाँ देखिए ।

अतः चन्द के प्रथम और उसके समकालीन कवियों में जलहन को मिलाकर तेरह कवि विदित हैं । रासो के देखने से जान पड़ता है कि इस समय हिन्दी-काव्य का अच्छा प्रचार था । प्रायः सभी राजदरबारों में भाषा कवियों का मान होता था, यहाँ तक कि उदयपुर के महाराजा समरसि ने पृथ्वीराज

प्रारम्भ होता है। आप जाति के ब्राह्मण थे। आपने दो नाटक एवं कई ग्रन्थ विहारी-हिन्दी में रचे। इनकी रचना परम प्रशंसनीय है। आपने साधारण बोल-चाल को आदर देकर अत्युत्तम रचना की है, जो पूर्वीय प्रान्तों के गले का हार हो रही है। चैतन्य महाप्रभु इनकी रचना को बहुत पसन्द करते थे। इनकी भाषा कुछ अधिक उन्नति कर आई थी। जयदेव मैथिल और उमापति ने भी विद्यापति ठाकुर की ही रीति पर रचना की। उधर राजपूताने में महाराणा कुम्भकर्ण स्वयं कवि एवं कवियों के आश्रयदाता हो गये हैं। संवत् १४५३ में नारायणदेव ने हरिश्चन्द्र-पुराण-कथा की रचना की। इसी से भारत के धार्मिक पुनरुत्थान का समय प्रारम्भ होता है। स्वामी रामानन्द का संवत् १४२५ के लगभग प्रादुर्भाव हुआ और १५५० के आसपास इनकी शिक्षाओं का बल फैलने लगा। सेन नाई, भवानन्द और कवीरदास इनके मुख्य शिष्यों में से थे, जो हिन्दी की कविता करते थे। इस समय तक भाषा और भी परिपक्व हो गयी थी। महात्मा कवीरदास ने उसका बहुत बड़ा उपकार किया। इन्होंने कोई पचास ग्रन्थ बनाये, जिनमें से ४६ का पता लग चुका है। इनकी कहावत बड़ी ही चोखी और दृष्टि अत्यन्त पैनी थी, एवं साफ़-साफ़ बातें सुनाने में ये कुछ भी नहीं हिचकते थे। अपने रंग के ये ऐसे पक्के थे कि काशी में सदा रहते हुए भी मरते समय मगहर चले गये, क्योंकि काशी में मरने से पापी भी मोक्ष पाता और मगहर में मृत्यु होने से धार्मिक मनुष्य भी नरकगामी होता है, ऐसा बहुतों का विश्वास है। अतः कवीरजी ने कहा कि “जो कविरा काशी मरै तौ रामै कौन निहार ?” अस्तु। कवीर-दासजी की भाषा माध्यमिक हिन्दी की पूर्व रूपवाली है। इनका समय संवत् १४७७ के आस-पास सिद्ध हुआ है। इनके

साथ हिन्दी रचना भी की। ब्राह्मणों में निश्चयात्मक रीति से यही प्रथम कवि थे। इनके प्रथम भुवाल एवं शारङ्गधर अनुमान से ब्राह्मण थे, परन्तु इसका निश्चय कुछ नहीं है। मोहन-लाल द्विज के विषय में भी संदेह सम्भव है। अतः अब हिन्दी की महिमा कुछ बढ़ी और संस्कृत के भारी पंडितों ने भी इसे अपनाया। गोरखनाथजी एक पन्थप्रवर्तक थे। इस कारण से भी अन्य पन्थ चलानेवालों की भाँति इन्होंने भी देश-भाषा ही में शिक्षा का देना उचित समझा। गौतम बुद्ध, नानक, दयानन्द आदि महात्माओं ने भी ऐसा ही किया। अपने उपदेशों को लोकप्रिय बनाने के लिए महात्मा लोग ऐसा करते हैं, जिससे सर्वसाधारण उनके उपदेशों को समझ सकें। इन कारणों से गोरखनाथजी द्वारा हिन्दी का बड़ा उपकार हुआ, क्योंकि इस समय से उसने पंडित-समाज में भी कुछ कुछ मान पाया। इन्होंने छन्दों में प्रायः ४० छोटे-बड़े ग्रन्थ रचे और ब्रजभाषा गद्य में भी एक अच्छा ग्रन्थ बनाया। यों तो दुवे पंचोली जानकीदास लिखित संवत् १२२६ का लिखा हुआ चित्तौर दरबार का एक परवाना मिला है, जिसे हिन्दी गद्य का पहला नमूना कह सकते हैं और सातवें अध्याय के आरम्भ में वह पाया जायगा; पर वास्तव में ये महात्मा गद्य के प्रथम कवि हैं। इनकी गद्य-रचना उत्कृष्ट है। अब तक के अधिकांश क्या प्रायः सभी कवि जन पाश्चात्य प्रान्तों के वासी थे, परन्तु इन्हीं महात्मांजी के साथ पूर्वीय कविता का भी प्रादुर्भाव होता है।

विद्यापति, कबीर आदि

इस समय तक बिहार के किसी कवि का नाम नहीं मिला, परन्तु १४४५ से महाकवि विद्यापति ठाकुर का रचना-काल

हिन्दी के रूप

इन ८०० वर्षों में हिन्दी ने तीन रूप बदले, अर्थात् प्राथमिक हिन्दी के दो और माध्यमिक का एक। अब तक के तीनों समयों का ध्येरा मोटे प्रकार से निम्नानुसार है:—

पूर्व प्रारम्भिक हिन्दी संवत् १३४३ वि० तक।

उत्तर प्रारम्भिक हिन्दी संवत् १४४४ वि० तक।

पूर्व माध्यमिक हिन्दी संवत् १५६० वि० तक।

द्वितीय समय नरपति नाल्ह से आरम्भ होता है और तृतीय विद्यापति ठाकुर से। यह तृतीय काल सूरदास के प्रथम समाप्त हुआ।

दूसरा अध्याय

प्रौढ़ माध्यमिक हिन्दी (१५६१—१६८०)

धार्मिक उन्नति

अब हिन्दी-गौरव का सूर्योदय-काल निकट आ रहा था और उसकी इस समय तक भली-चंगी उन्नति होकर प्रौढ़ावस्था आ पहुँची थी। उधर अँगरेज़ी में संवत् १५३४ से विद्या का पुनरुत्थान एवं धर्म-संशोधन (Renaissance and Reformation) प्रारम्भ हुआ था। हमारे यहाँ स्वामी रामानन्द के ही समय (संवत् १४५६) से उसकी जड़ पड़ चुकी थी, परन्तु अब उसका पूर्ण विकास होना था। महाप्रभु बल्लभाचार्य का जन्म संवत् १५३५ में हुआ था और १५६० के

शिष्य भगोदास, धर्मदास और श्रुत गोपाल कवि थे तथा इनके पुत्र कमाल ने भी कविता की है। अब तक हिन्दी में चन्द, विद्यापति और कबीर महाकवि थे, जिनमें प्रथम दो राजाश्रित थे और तीसरे सन्त। इन सब में कबीरदास परमोत्कृष्ट कवि थे।

अन्य कविगण

संवत् १४८० वि० में महात्मा नामदेव छीपी और १५०३ में ऋषिवर रैदास चमार भी नामी भक्त और लेखक हुए। हमारा विचार था कि हिन्दी-काव्य में प्रेम-कथाओं का चलन मुसलमान कवियों द्वारा चला है, पर सबसे पहले संवत् १५१६ वि० में राजपूताना-निवासी दामो नामक कवि ने लक्ष्मणसेन पद्मावती प्रेम-काव्य की रचना की। संवत् १५३७ में चरणदास ने ज्ञानस्वरोदय ग्रन्थ बनाया और १५३० में हित-संप्रदाय के अलि भगवान ने कविता की। सौभाग्य का विषय है कि पंजाब के सुप्रसिद्ध धर्म सुधारक बाबा नानक ने भी हिन्दी में काव्य किया। इनके अनुयायियों में आगे चलकर गुरुगोविन्दसिंहजी ने भी हिन्दी को अपनाया। आज भी सिख लोगों में इसका कुछ-कुछ प्रचार है और अब विशेषतया बढ़ता हुआ देख पड़ता है। संवत् १५६० में कुतबन शैख ने मृगावती नामक प्रेम-कहानी दोहा-चोपाइयों में लिखी, तथा सेन कवि इस समय का अच्छा कवि हो गया है, जिसकी भाषा माध्यमिक श्रेष्ठ हिन्दी से प्रायः विलकुल मिल गयी है। अतः माध्यमिक हिन्दी का प्रारम्भिक काल इसी समय से समाप्त होता है।

भारी है कि अन्य कवियों के पचास-पचास, सौ-सौ ग्रन्थ उसकी बराबरी नहीं कर सकते; यहाँ तक कि सूरजी की वाणी सवा लक्ष प्रसिद्ध है, यद्यपि इस समय उनके केवल चार-पाँच हजार पद देखने में आते हैं। महान्या सूरदासजी हिन्दी के बड़े ही नामी कवि हैं और हमने अपने हिन्दी-नवरत्न में उन्हें बृहत्त्रयी में रक्खा है। इन महाकवि के अनेक वर्णन ऐसे सुप्रबन्धयुक्त और उत्तम हैं कि उनकी बराबरी हिन्दी में किसी की भी कविता नहीं कर सकती। अन्य कवियों के प्रबंधों और वर्णनों का सम्मिलित प्रभाव प्रायः बहुत चमत्कारी नहीं हुआ करता, अतः अँगरेज़ लोग अपने यहां के नामी कवियों के सामने हमारे कवि-जनों की पूर्ण महानता स्वीकार करने में आनाकानी किया करते हैं; पर सूरदास जी के प्रबंधों को ध्यानपूर्वक मनन करने से उन्हें मानना पड़ेगा कि हिन्दी-कविता में भी बड़े-बड़े रत्न वर्तमान हैं।

अष्टछाप

सूरदासजी महाप्रभु बल्लभाचार्य के शिष्य थे। इनके अतिरिक्त कृष्णदास, परमानन्ददास और कुम्भनदास भी महाप्रभुजी के शिष्यों में नामी कवि हुए हैं। चतुर्भुजदास, छीत स्वामी, नन्ददास और गोविन्द स्वामी महाप्रभु के पुत्र गोस्वामा श्रीबिठलनाथजी के शिष्यों में मुख्य थे। इन्हीं आठों को मिलाकर गोस्वामीजी ने “अष्ट-छाप” स्थापित की, जिसपर सूरदासजी परम प्रसन्न होकर कहने लगे कि “थपि गोसाईं करी मेरी आठ मढ़े छाप”। इससे सूरदास की महा निरभिमानता सिद्ध है, क्योंकि उनके सामने अष्ट-छाप के अन्य सात कवि कुछ भी न थे। इनमें से नन्ददासजी,

पीछे उनकी अमृतमयी शिक्षाओं का प्रभाव हिन्दी पर पड़ने लगा, जैसा कि आगे विशेष रूप से लिखा जावेगा। तल्ली-नता एक भारी बल है। यह जिस ओर लग जाती है उसी ओर कुछ कर दिखाती है। हिन्दी के भाग्य से बलुभाचार्य ही का नहीं, वरन् वैष्णवों की प्रायः सभी संप्रदायों का रुझान हरि-भजन करने में उसकी ओर हो गया। फिर क्या था ! इन सभी महात्माओं ने स्वयं हिन्दी में हरियश गाया और इनके शिष्यगण एकदम पदों ही द्वारा भजनानन्द में निमग्न हो गये, मानों भक्ति और कविता का स्रोत ही हिन्दी में फूट निकला और उससे उमड़े हुए प्रेम-पयोधि की तरंगों में सारा देश प्रवाहित होने लगा।

सूरदास

संवत् १५६० से ही महात्मा सूरदासजी का कविता-काल प्रारम्भ होता है। इनकी भाषा को यद्यपि हम लोगों ने माध्यमिक माना है, तथापि कई अंशों में वह वर्तमान हिन्दी से प्रायः पूर्ण रीति से मिलती-जुलती हुई है। सभी भाषाओं का विकास धीरे धीरे ही होता है और इसमें सन्देह नहीं कि सौर-काल की हिन्दी के सामने भूषण और देव काल वाली एवं वर्तमान भाषा अधिक परिपक्व है, पर इससे यह न समझना चाहिए कि स्वयं सूरदास, तुलसीदास अथवा देव की भाषा से इस समय के लेखकगण श्रेष्ठतर भाषा लिखते हैं। ऐसा कदापि नहीं है। ये महात्मा हिन्दी के प्राण और नायक हैं। जिस प्रकार का माधुर्य इनकी कहावतों में है, वह अन्य लोगों को कहाँ नसीब हो सकता है, पर समयानुसार भाषा की उन्नति होनी स्वाभाविक ही है। सूरदासजी ने थोड़े ही ग्रन्थ बनाये हैं, परन्तु केवल सूरसागर इतना

ग्रन्थ रचा। इसकी कविता विशद और वर्णन सोहावने हैं। यद्यपि इनकी भाषा कुछ अन्य भारी कवियों के सामने कुछ ग्रासीण अवश्य है, तथापि इनके वर्णन सांगोपांग होते हैं। मीराबाई का कविता-काल १५६० से १६०३ पर्यन्त है। इनकी जीवन-यात्रा केवल ३० वर्ष में समाप्त हो गयी, नहीं तो शायद इनकी कविता बहुत ऊँचे दर्जे की होती; तो भी इतने ही में इनका पद भाषा के भक्त कवियों में उच्च है। कुछ लोगों ने इन्हें महाराजा कुम्भकर्ण की स्त्री होना लिखा है, पर यह नितान्त अशुद्ध है। नरोत्तमदासजी का कविता-काल संवत् १६०२ है। इनका सुदामा-चरित्र प्रबल और स्वाभाविक काव्य का अच्छा उदाहरण है। श्रीस्वामी हरिदासजी ने संवत् १६०७ से काव्यरचना प्रारम्भ की। यह पूरे ऋषि और ढट्टियों की सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। गाने में ये स्वयं तानसेन के विद्या-गुरु थे।

अकबरी दरबार

महाराजा वीरबल अकबरी दरबार में मुसाहब और सरदार थे। इन्होंने कविता भी ब्रह्म के उपनाम से की, जिसमें अनुप्रास तथा उपमाओं की अच्छी बहार है। इनके अतिरिक्त स्वयं अकबर कविता करते थे तथा टोडरमल, तानसेन, मानसिंह, फ़ैज़ी, अबुलफ़ज़ल, नरहरि, अजबेस और महाकवि गंग एवं रहीम आदि कवि उनके दरबार में उपस्थित थे। इनमें गंग और रहीम की गणना टकसाली कवियों में है। गंग के बहुत छन्द नहीं मिलते, पर सुप्रसिद्ध कवि भिखारोदास ने इनकी तुलना स्वयं श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी से की है। वस इसी से इनके महत्त्व का परिचय मिल सकता है। रहीम अथवा रहिमान (अब्दुरहीम खानखाना)

जो किसी तुलसीदास के भाई थे, सूरदास के पीछे अष्टछाप में सर्वोत्कृष्ट कवि थे। इस काल (१५६०-१६३०) में वैष्णव सम्प्रदायों के अन्य सैकड़ों कवियों ने भी मनोहर कविता की है, जिसका हाल आगे लिखा जायगा।

अन्य कविगण

संवत् १५७५ वि० में छीहल कवि ने “पचसहेली” नामक एक प्रेम-कहानी कही। यह कवि मारवाड़ का जान पड़ता है।

संवत् १५८२ वि० से सुप्रसिद्ध महात्मा और कवि श्री-स्वामी हरिवंशहित का कविता-काल प्रारम्भ होता है। इनके केवल ८४ पद मिले हैं, जो सैर कविता का पूरा सामना करते हैं। यदि इनकी अधिक वाणी मिल जावे, तो सम्भव है कि कविता में इनकी गणना सूरदासजी के बराबर हो। सुना जाता है कि इनके भजन बहुत से छिपे पड़े हैं। इनके अनुयायी लोग अपने नाम के साथ “हित” जोड़ दिया करते हैं। इनमें बहुतेरे उत्कृष्ट कवि हो गये हैं। संवत् १५८७ वि० में लालचदास हलवाई ने दशम स्कंध की कथा दो चौपाइयों में लिखी।

प्रसिद्ध कवि महापात्र नरहरि बन्दीजन का जन्म संवत् १५६२ वि० में हुआ था। संवत् १५६० वि० से इनका कविता-काल प्रारम्भ होकर संवत् १६६७ तक चला। इनकी अवस्था १०५ वर्ष की हुई, जिसमें से ७७ वर्ष इनका कविता-काल है। इनका अकबर बादशाह के दरबार में भान था।

स्वामी निपटनिरंजन का कविता-काल संवत् १५६५ वि० से है। संवत् १५६८ वि० में कृपाराम ने दोहों में हित तरंगिणी नामक एक उत्कृष्ट रीति-ग्रन्थ बनाया और मलिकमुहम्मद जायसी ने संवत् १५७५ से १६०० तक पद्मावत जैसा नामी

कर श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी का कविता-काल है। जितना हिन्दी का उपकार इस एक महात्मा से हुआ उतना किसी से भी नहीं बन पड़ा। वरन् यदि दो-तीन अन्य महानुभावों को छोड़ दें, तो दृढ़ता से कहा जा सकता है कि अन्य किन्हीं पूरे एक दर्जन कवियों को मिलाकर भी एक तुलसीदास की समता नहीं हो सकती। वास्तव में हिन्दी-कवियों में इन का पाया सभी से ऊँचा है। यों तो महात्मा सूरदास और देवजी प्रायः गोस्वामीजी के जोड़ के ही कहे जा सकते हैं, पर सब में प्रथम पद गोस्वामीजी को ही मिल सकता है। धन्य वह समय था जब इन महात्मा का जन्म हुआ ! धन्य वह दिन था कि जब इन्होंने हिन्दी-भाषा में काव्य करना प्रारम्भ किया ! इस नर-रत्न के ऋण से हिन्दी-भाषा और हिन्दूजाति कभी मुक्त नहीं हो सकती। संसार के किसी भी कवि के विषय में यह निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता कि उसने तुलसीदासजी से श्रेष्ठतर कविता की है। अँगरेजी कविता के चूड़ामणि महाकवि शेक्सपियर (संवत् १६२१ वि० से १६७३) की उपमा प्रायः इनसे दी जाती है और कतिपय अँगरेज लेखकों ने ममतावश उसे इनसे भी कुछ बड़ा माना है। इसमें सन्देह नहीं कि उसके हैमलेट, मैकवेथ, बिटर्स टेल, आँथेलो, किङ्गलियर, जूलियस सीज़र, वेनिस का सौदागर इत्यादि नाटक नामी और प्रशंसनीय हैं, परन्तु कुल बातों पर ध्यान देने से गोस्वामीजी में उससे अधिक चमत्कार पाया जाता है। बिटर्स टेल में प्रेम और उसकी जाँच का अच्छा चित्र खींचा गया है; पर सीताजी के प्रेम-वर्णन के सामने वह फीका पड़ जाता है। आँथेली में उसका सन्देह एवं आयगो की धूर्ततावाला भाग मुख्यांश है, जो भानुप्रताप कथान्तर्गत कपटी मुनि के वर्णन से पीछे छूट जावेगा। किङ्गलियर में

के नीति एवं स्फुट विषय संबन्धी यथार्थ तथा चटकीले भावों से पूर्ण दोहे हिन्दी-संसार में प्रसिद्ध हैं और बिहारी लाल आदि दो चारौ-लोगों को छोड़ अर किसी के दोहे इनकी समता नहीं कर सकते। इसी समय में गोलकुण्डा-नरेश भी हिन्दी-कविता करते थे। यह हिन्दी के गौरव का विषय है कि इस समय के दो बादशाह इसमें स्वयं कविता करते एवं कवियों को मान देते थे। अकबर बादशाह के यहां संवत् १६२० वि० के लगभग गंगा भाट खड़ीबोली का प्रथम गद्य लेखक हुआ, जिसने “चन्द छन्द वरनन की महिमा” नाम्नी पुस्तक रची। कदाचित् यह वही सुप्रसिद्ध गंग कवि हों, जिसका नाम ऊपर आ चुका है।

अन्य कवि-जन

सौर काल के अन्य कवियों में महात्मा दादूदयाल, श्रीभट्ट, बिहारिनिदास, नागरीदास, भगवानहित और रसिक मुख्य थे। दादूजी ने रामभक्ति पर विशेष ध्यान दिया और दो प्रकृष्ट भक्तिपूर्ण ग्रन्थ निर्माण किये। यह प्रसिद्ध दादू-पंथ के प्रवर्तक हैं। समय-समय पर इनके अनुयायियों ने (जिनमें सुन्दरदास सर्वोत्तम हैं) अच्छी कविता की है। अन्य पंथियों की भाँति इनके अनुयायी लोग भी अपने यहां की रचनाओं को प्रायः छिपाये रखना ही श्रेष्ठ समझते हैं, पर हाल में इन लोगों की अच्छी छानबीन हुई है। शेष पाँच कवियों के विषय में यहाँ कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं; आगे चल कर प्रत्येक का विस्तृत व्योरा लिखा जायगा।

तुलसीदास

संवत् १६३१ से वि० १६८० पर्यन्त कविकुल-कमल-दिवा-

और मनोहर वर्णन करके जो ईश्वरो प्रकृति, शांतिरस, काव्यांगों और भक्तिभाव की अद्भुत तरंगों प्रवाहित की हैं, जिनमें निमग्न होकर वे इस स्वार्थी संसार के बहुत परे उठ गये हैं, उनका स्वाद साधारण संसारी जातियों के विद्वानों तक को पूर्ण रीति से अनुभूत नहीं हो सकता। गोस्वामीजी के वर्णनों को पढ़कर मनुष्य नीची और उच्च सभी प्रकार की प्रकृतियों को भली भाँति जानकर उत्तम मार्ग की ओर ही प्रवृत्त होगा। भक्तिरस का जो गम्भीर और हृदय-द्रावक भाव इनकी रचनाओं में हर स्थान पर वर्तमान रहता है, उसके सामने शेक्सपियर कुछ भी उपस्थित नहीं कर सकता। वन्दना, विनय, अयोध्या-कांड के सभी वर्णन, वर्षा और शरद्वर्णन, अनेक विनतियाँ, लंका-दहन (कवितावली का), बाल-लीला और ज्ञान-भक्ति आदिक, जैसे अच्छे गोस्वामीजी ने कहे हैं, उनके जोड़ शेक्सपियर आदि में एकदम नहीं मिलते। भाषा और कविता-शैली में तुलसीदासजी ने पृथक्-पृथक् चार प्रकार के कवियों की भाँति रचनाएँ की हैं, जिनके उदाहरण-स्वरूप रामचरित-मानस, कवितावली, कृष्ण-गीतावली और विनय-पत्रिका कही जा सकती हैं। दोहावली और सतसई आदि में इनकी एक पाँचवी ही छटा देख पड़ती है। इनके शेष ग्रन्थ इन्हीं पाँच विभागों में आवेंगे।

अकबरी दरबार के कवि सौर काल से ही दृष्टिगोचर होने लगे थे; परन्तु भाषा-काव्य पर इनका विशेष प्रभाव तुलसी-काल में पड़ा। इस प्रभाव के कारण विविध विषयों की परिपाटी पड़ी एवं फारसी के चमत्कारी भावों का आवेश हिन्दी-साहित्य में हुआ।

तुलसी-काल

तुलसी-काल इन तीन प्रधान उपविभागों में बँट सकता

कार्नेलिया का पितृप्रेम एवं गानरिल और रीगन की चालाक तथा लियर पर उनका प्रभाव अच्छा वर्णित हुआ है, पर कैकेयी की कुटिलता पर दशरथ की दशा एवं श्रीराम का पितृप्रेमवाले वर्णनों के सामने बरबस कहना पड़ेगा कि किङ्गलियर किसी लड़के की रचना है। जूलियस सीज़र में सीज़र का परम पुरुषार्थ, ब्रूटस की सूखता एज्मू ऐन्टनी की वक्तृता है, पर इनकी प्रभा अयोध्याकांड के अनेकानेक व्याख्यानों के सामने एकदम मन्द पड़ जाती है। मचेंट-आफ़-वेनिस में सन्दूक खोलने में प्रणयी लोगों के विचार एवं न्यायालय का दृश्य अच्छा है। इनके सामने स्वयंवर में राम-द्वारा धनुष टूटने के समय सीता और उनकी माता के विचार एवं अन्य अनेक वर्णन कहीं बढ़े-चढ़े हैं। हैमलेट और मैकबेथ परम प्रशंसनीय ग्रन्थ हैं; पर रामायण में अयोध्याकांड के वर्णन उनसे कम कदापि नहीं हो सकते। शेक्सपियर ने कुल मिलाकर आकार में गोस्वामीजी से प्रायः ड्योढ़ी कविता की है, जिसमें प्रायः आधा गद्य है। इन ग्रन्थों में मानुषीय प्रकृति और नैसर्गिक पदार्थों के ऐसे २ उत्तम और मनोहर चित्र खींचे गये हैं कि उन्हें पढ़कर अवाक् रह जाना और उक्त कवि-कुल-मुकुट के समुख शिर नीचा करना पड़ता है। उसने प्रायः सभी प्रकार के मनुष्यों की प्रकृतियों; विविध दशाओं, शृंगार एवं हास्यरसों और अन्य कई तरह के चमत्कारी विषयों के चित्ताकर्षक वर्णन किये हैं, तथा कथानक-संगठन में अच्छी सफलता पायी है। शांति, वीर और भयानक रसों को छोड़ शेष अन्य रसों के भी बड़े ही उत्तम उदाहरण उसमें पाये जाते हैं। नबसे बढ़कर बात यह है कि मानुषीय प्रकृति का वर्णन शेक्सपियर ने अद्वितीय किया है। इस विषय में गोस्वामीजी तक को उसने कहीं-कहीं नीचा दिख दिया है; पर गोस्वामीजी ने मानुषीय प्रकृति का अत्यन्त सच्चा

रामचन्द्रिका लिखकर चलायी। कविप्रिया-द्वारा इन्हें हिन्दी-साहित्य के प्रथम आचार्य की उपाधि मिली। रसिकप्रिया एवं कविप्रिया से भी हम इन्हें बड़े कवियों में प्रथम अभक्त शृंगारी कवि समझते हैं। कुल मिलाकर यह हिन्दी के परमोत्कृष्ट कवियों में गिने जाते हैं और हमारे हिन्दी-नवरत्न में इन्होंने भी ऊँचा स्थान पाया है। यह अँगरेजी के मिल्टन कवि के समान हैं। दोनों पूर्ण विद्वान् थे और जैसे केशवदासजी संस्कृत छोड़ हिन्दी-काव्य करने में कुछ लज्जा सी बोध करते थे, वैसे ही मिल्टन भी लैटिन त्यागकर अँगरेजी में ग्रन्थ-रचना करने में न्यूनता अवश्य समझते थे। इन दोनों की अवस्था भी प्रायः बराबर थी और इनके मरणकाल में एक विलक्षणता यह है कि मिल्टन का देहान्त सन् १६७४ ईसवी में हुआ और केशवदास का संवत् १६७४ विक्रमीय में इस उपविभाग में केशवदास को छोड़कर प्रवीणराय वेश्या, लालनदास, नाभादास, कादिरबख्श, अमरेश, मुकामणिदास, मुबारक, बनारसीदास, उसमान आदि प्रधान कवि थे। नाभादासजी ने भक्तमाल में उस समय तक के भक्तों का वर्णन करके हम लोगों का बड़ा उपकार किया है। अमरेश की कविता बड़ी टकसाली होती थी और मुकामणिदास की रचनाओं को स्वयं तुलसीदासजी बहुत पसन्द करते थे। मुबारक की कविता रसमयी होती थी। बनारसीदास जैन कवियों में प्रधान हैं। इन्होंने कुछ गद्य भी लिखा है। उसमान ने जायसी की भाँति चित्रावली नामी एक प्रेम-कहानी कही। तृतीय उपविभाग में (संवत् १६७१-८०) लीलाधर, सुन्दरदास, ताहिर, घासीराम, जटमल इत्यादि सुकवि हैं। सुन्दरदासजी स्वामी दादूदयालवाले सम्प्रदाय के सर्वोत्तम कवि हुए हैं। इनका कविता-काल संवत् १६७७ से प्रारम्भ

है—प्रथम संवत् १६४५ पर्यन्त, द्वितीय संवत् १६७० तक और तृतीय शेष कालिक । प्रथम उपविभाग में अग्रदास, करनेस, बलभद्र मिश्र, होलराय, रहीम, लालचन्द, रसखान, अनन्तदास आदि भारी कवि थे । अग्रदास ने रामभक्ति को प्रधान रक्खा, करनेस ने पहले पहल भँडौवा बनाने की चाल चलाई और बलभद्र मिश्र ने बड़ी गम्भीर भाषा में नखशिख का पहला स्वतंत्र भाव-पूर्ण ग्रन्थ निर्माण किया । रहीम के चटकीले दोहों में नीति की प्रधानता है । लालचन्द (१६४३) ने हिन्दी में पहला इतिहास-ग्रन्थ बनाया । रसखानजी मुसलमान होने पर भी पूरे वैष्णव थे । उन्होंने प्रेम का अच्छा चित्र खींचा । इनके छन्दों से भक्ति टपकी पड़ती है । कविता भी इनकी बड़ी प्रशंसनीय है । भक्ति-भावों के अतिरिक्त कपितय कवियों ने विविध विषयों की ओर भी ध्यान दिया । महाराज टोडरमल के समय तक मुसलमानी दफ्तरों में हिन्दी का ही प्रचार था । इससे यह हानि थी कि हिन्दू लोग फ़ारसी बहुत नहीं पढ़ते थे, सो उनको सरकार में बड़े-बड़े ओहदे कम मिलते थे । यही सोच कर इन महाराज ने दफ्तरों से हिन्दी उठा दी । इससे हिन्दी-प्रचार में कुछ क्षति हुई, पर हिन्दुओं को लाभ हुआ तथा उनमें फ़ारसी-प्रचार की वृद्धि से हिन्दी में नये-नये भाव आने लगे और विविध विषयों के वर्णन की परिपाटी ने बल पाया ।

केशवदास आदि

द्वितीय उपविभाग में केशवदासजी प्रधान कवि हैं । इन्होंने संवत् १६४८ से ६८ तक कविता की है । जैसे तुलसीदास ने दोहा-चौपाइयों में कथा लिखने की परिपाटी बढ की, वैसेही इन्होंने सवैया घनाक्षरी आदि विविध छन्दों में ग्रन्थ-रचना की चाल

प्रचार बढ़ा। विट्ठलनाथ, गोकुलनाथ, गंगाभाट, बनारसीदास और जटमल इस समय के गद्य-लेखक हैं। इस काल में भाषा में अनुप्रास, यमकादि का विशेष आदर नहीं हुआ।

तीसरा अध्याय

पूर्वालंकृत हिन्दी (संवत् १६८१ से १७६० वि० तक)

उन्नति

अब तक बड़े-बड़े कवियों के हाथ में भाषा क्रमशः विशेष उन्नति करती आयी थी, और इस समय के आरम्भ से ही उसकी परिपक्वता में कोई कसर नहीं रही थी, सो इस काल के कवियों का रुझान भाषा के अलंकृत करने की ओर विशेष रहा और इस श्रम में वे पूर्णतया कृतकार्य हुए। इस उत्तम समय में हिन्दी की ओर भी अधिक उन्नति हुई और उसमें विविध विषयों के वर्णन की प्रथा दृढ़तर हुई। अन्तिम समय में जैसे अकबरी दरबार से हिन्दी को लाभ पहुँचा था, वैसे ही जहाँगीर और शाहजहाँ के दरबारों से इस काल के आदिम भागों में पहुँचता रहा। औरंगज़ेब के समय से उसके अत्याचारों एवं अन्य कारणों से भारत में जातीयता जागृत हुई, और हिन्दुओं में शूर-वीर उत्पन्न होकर हिन्दू-साम्राज्य के लिए प्रयत्न करने लगे। ये लोग स्वभावतः कवियों का मान करते और वीर कविता को पसन्द करते थे। अतः विविध विषयों की परिपाटी ने और भी बल पाया और वीर-कविता भी हिन्दी में बहुतायत से बनने लगी। इस उत्तम काल में भाषा एवं भाव-सम्बन्धी उन्नतियाँ बहुत अच्छी हुई और

हे ता है। इसी कारण इनका यहाँ वर्णन किया गया है, नहीं तो इनकी रचनाएँ संवत् १७४६ तक पहुँची हैं। इन्होंने भक्ति और संसार की असारता के अच्छे कथन किये हैं। घासी-राम की कहावत बड़ी चोखी तथा सुहावनी है और इनकी अन्योक्तियाँ भी अच्छी होती हैं। इन्होंने “पक्षी-विलास” नामक एक उत्कृष्ट ग्रन्थ बनाया। जटमल खड़ीबोली गद्य का द्वितीय लेखक है। इसने “गोरा बादल की कथा” नामक ग्रन्थ में उसी का प्राधान्य रक्खा है।

भाषा

सारांश यह कि सौर तुलसी-काल हमारी भाषा का बड़ा ही उज्ज्वल समय हुआ है। जैसे अंगरेज़ी में एलीज़-बेथ का समय (संवत् १६१५—१६६०) उक्त भाषा के लिये बड़ी उन्नति का है, वैसे ही अकबर का राजत्वकाल (संवत् १६१३—१६६२) हिन्दी की वृद्धि और गौरव का ज़माना हुआ है। दोनों ही देशों में इस समृद्ध-शाली समय में बड़ी ही सन्तोषजनक उन्नति हुई और अच्छे-अच्छे कवि व लेखक हो गये। उर्दू भाषा की जड़ भी मुख्यतया इसी समय में पड़ी। इस बृहत् काल में पहले तो ब्रजभाषा तथा पदेों का विशेष बल रहा और कृष्ण कविता पर अधिक ध्यान दिया गया, पर तुलसी-काल से रामभक्ति की भी धारा बही। सौरकाल में कुछ रामभक्तों ने कृष्ण की भाँति उनका भी शृंगार-पूर्ण वर्णन किया। तुलसी के साथ ब्रज-भाषा का सिका कुछ शिथिल हुआ और अवधी भाषा ने भी हिन्दी में स्थान पाया, यहाँ तक कि दोहा-चौपाइयों के ग्रन्थों में उसी का प्राधान्य हो गया। गद्य का भी कुछ-कुछ

यह समय १६८१ से १७६० पर्यन्त चलता है। इसे हमने भूषण-देव-काल कहा है। इसके पाँच उपविभाग हो सकते हैं, अर्थात् सेनापति-काल (संवत् १७०६ तक), विहारी-काल (संवत् १७२० तक); भूषण-काल (संवत् १७५० तक), आदिम देव-काल (संवत् १७७० तक) और माध्यमिक देव-काल (संवत् १७६० तक)।

सेनापति-काल

सेनापति-काल में (संवत् १६८१—१७०६ वि०) भुवदास, चतुर्भुजदास, व्यासजी, सदानन्द, चिंतामणि, मल्लकदास, कवीन्द्राचार्य, माधुरीदास, सुन्दर ब्राह्मण, पोहकर, जोयसी, बेनी, बनवारी, नीलकंठ, महाराजा जसवन्तसिंह, ताज, शिरोमणि आदि भारी कवि थे। सेनापति एक बड़े ही अनूठी रचना करनेवाले सत्कवि थे। आपने प्रायः घनाक्षरियाँ लिखी हैं, क्योंकि छन्द चोरी जाने के अर्थ से आप प्रत्येक छन्द में अपना नाम अवश्य रखते थे और सदैव में इनका नाम नहीं आ सकता है। आपने षट्छतु सब से प्रथम पुस्तकाकार परमोत्तम कहा। हम इन्हें हिन्दी का घटखर्पर समझते हैं। ऐसा उत्तम और अनूठा षट्छतु संस्कृत से इतर किसी अन्य भाषा के कवि ने नहीं कहा होगा। इन्होंने श्लेष-काव्य का एक पूरा अध्याय लिखा है और इनकी भाषा यमक एवं अनुप्रास-युक्त तथा परम ओजस्विनी होती थी। कवीन्द्राचार्य का नाम कुछ और था; बादशाह शाहजहाँ ने इन्हें यह उपाधि दी थी। इनकी भाषा में भी अनुप्रास का बाहुल्य है और यही हाल सुन्दर ब्राह्मण का है। पोहकर एक नामी कवि हो गया है। इसे कैद का दंड हो गया था, सो इसने "रसरतन" नामक एक प्रेम-कहानी कारागार में ही बनायी,

जातीयता जागृति की पूरी झलक कविता में आई। सौर-काल के भक्त कविगण प्रायः वात्सल्य और सखीभावों से कविता बनाते थे, सो पूरे भक्त होते हुए भी वे श्रीकृष्ण का शृंगार-त्मक वर्णन करते थे। वे स्वयं निर्विकार मनुष्य थे और उनके चित्तों में इससे कुछ बुरे भाव नहीं आते थे, परन्तु साधारण सांसारिक मनुष्यों से यह आशा नहीं की जा सकती थी कि उनके भी चित्त उस कविता से वैसे ही विकार-हीन रहते। सो जैसा कि हम देख चुके हैं, तुलसी-काल से अभक्तकवियों का समय शृंगार एवं विविध विषयों में कुछ-कुछ आ गया। इस प्रणाली ने भूषण और देव-काल में बहुत बड़ी उन्नति पाई। शृंगार-कविता भक्ति-पक्ष को विलकुल छोड़कर नितान्त शृंगार की ही रह गई और विविध विषयों में युद्धों के साथ वीर, रौद्र और भयानक रसों का भी अच्छा वर्णन होने लगा। वीर मनुष्यों के कुछ छन्दोवद्ध जीवनचरित्र भी कहे गये और हिन्दी-कविता ने अनेक विषयों में अच्छा चमत्कार दिखाया। परन्तु फिर भी उन विषयों की सीमा बहुत संकुचित रही और सांसारिक उन्नति की ओर हमारे लेखकों ने बहुत कम ध्यान दिया। अतः जैसी उन्नति इस समय तक अंगरेज़ी विद्या ने नाना भाँति के उपकारी विषयों द्वारा कर ली थी, उसका हमारे यहाँ कहीं पता तक न था। कला-कौशल, विज्ञान, रसायन, अर्थ-शास्त्र, इतिहास, जीवन-चरित्र, समालोचना, पुरातत्व, इत्यादि शाखाओं में अब तक हमारा साहित्य प्रायः एक दम शून्य था। अवश्य ही अब इनकी ओर कुछ-कुछ प्रवृत्ति होने लगी है, पर अभी इन अंगों की कुछ भी पुष्टि नहीं हुई है। बीसवीं शताब्दी में होते हुए भी इन बातों में योरोप के देखते हम लोग प्रायः सोलहवीं सदी में ही पड़े हैं। अस्तु।

हुई है, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। इन्होंने वास्तव में कृजे में समुद्र भर दिया है। इनका एक-एक दोहा अपूर्व आनन्द देता है। उच्च खयाल तथा तलाज़मों में इन्होंने फारसी एवं उर्दू के नामी कवियों को मात किया है। इनकी कविता हर प्रकार के कवियों को रुचिकर हुई है। इस कवि की दृष्टि हिन्दी-भाषा के प्रायः सभी कवियों से पैनी थी और अनुभव भी खूब बढ़ा-चढ़ा था। इनका शायद ही कोई दोहा निकले, जिसमें किसी प्रकार का विशेष चमत्कार न हो। काइयाँपने में यह कवि शायद सबसे बड़ा हुआ है। इसकी भाषा वैसी बढ़िया चाहे न हो, पर भाव अपूर्व हैं। केवल ७०० दोहों के सहारे इनका पद हिन्दी-संसार में इतना ऊँचा है कि कोई-कोई कविता-प्रमी लोग इन्हें सर्वोत्तम कवि समझते हैं, और हमने भी अपने नवरत्न में इन्हें चौथा स्थान दिया है। इनकी देखा-देखी बहुत कवियों ने शतसैयाएँ बनायीं, पर उन बूढ़ों भेंट कहाँ ? विहारी की कविता वास्तव में हिन्दी का शृंगार है।

राजा शम्भूनाथ ने नख-शिख बड़ाही टकसाली बनाया। ऐसा उत्तम नख-शिख भाषा में किसी कवि का नहीं है। इनकी अन्य कविता भी सानुप्रास एवं भाव-पूर्ण है। नरहरिदास ने अच्छे विषयों पर रोचक रचना की, और प्राणनाथ ने बुंदेलखंड में धामियों का पन्थ चलाया, जिसमें हिन्दू-मुसलमान मतों का मिश्रण है। अब धामियों की जाति ही पृथक् सी हो गई है। प्राणनाथ जी की कविता भी साधारणतया अच्छी है।

भीष्म कवि ने भागवत दशम स्कन्ध के पूर्वार्द्ध का बढ़िया छन्दों में सारांश कहा और दामोदरदास ने मार्कंडेय पुराण का राजपूतानी गद्य में उलथा किया। मंडन मिश्र की

जिससे जहाँगीर के हुक्म से यह मुक्त कर दिया गया। चिंतामणि त्रिपाठी हिन्दी के बड़े प्रसिद्ध कवि हो गये हैं। ये सब से पहले आचार्य हैं, जिन्होंने सांगोपांग साहित्य-रीति-वर्णन की है। इनके छोटे भाई भूषण, मतिराम और नीलकंठ भारी कवि थे, जिनमें से प्रथम दो की गणना हिन्दी-नवरत्नों में है। इनका वर्णन आगे होगा। नीलकंठ उपनाम जटाशंकर जी भी सुकवि थे। इनका ग्रन्थ अमरेश-विलास खोज में मिला है, जिससे इन सब भाइयों के समय-सम्बन्धी हमारे विचारों में प्रायः २० साल का हेर-फेर हो गया है। जोयसी का केवल एक छन्द विदित है, पर उसी के कारण इसकी गणना सुकवियों में है। अवश्य ही इसके और छन्द अथवा ग्रन्थ कहीं छिपे पड़े होंगे। वेनी कवि कई एक हुए हैं। इस समय के वेनी असनी के वन्दीजन थे। इनकी कविता विशद और सानुप्रास है। बनवारी ने जोधपुर के अमरसिंह राठौर की प्रशंसा में काव्य किया है। इनकी रचनाएँ परम गम्भीर तथा मनोहर होती थीं। महाराजा जसवंतसिंह जोधपुराधिपति हिन्दी के महान् कवीश्वरों और आचार्यों में गिने जाते हैं। इनका “भाषाभूषण” अलंकार-ग्रन्थ बड़ा ही उत्कृष्ट है। इस काल से अनुप्रासादि का विशेष समावेश भाषा में होने लगा।

विहारी-काल

विहारी-काल (संवत् १७०७-१७२० वि०) के प्रसिद्ध कवि राजा शम्भुनाथ सोलंकी, नरहरिदास, प्राणनाथ, भरमी, भीष्म, दामोदरदास, मंडन, सबलसिंह, सरसदास और अनन्य शीलमणि हैं।

विहारीलाल की कविता जैसी अनूठी और हृदयग्राहिणी

इनकी गणना हिन्दी के परमोच्च कवियों में है और हमारे नवरत्न में इनको पाँचवाँ स्थान मिला है। कविताही के बल से इनका विभव राजाओं के समान हो गया था। जहाँगीर के राजत्वकाल में जन्म लेकर इन्होंने जातीयता का जन्म एवं पूर्ण विकाश तथा मुगलों का पतन एवं पेशवाओं का साम्राज्य स्थापित होने के पीछे अपनी सभी अभिलाषाएँ पूरी हो जाने के उपरान्त प्रायः १०२ वर्ष की आयु में शरीर त्यागा। इन महाराज का नाम हिन्दी-साहित्य में सदा अचल रहेगा।

भूषणजी के छोटे भाई मतिराम ने कई ग्रन्थ रचे। इनकी भाषा बड़ी ही प्रसाद-पूर्ण और श्रुति मधुर है। देव को छोड़कर सब कवियों से वह श्रेष्ठतर है और उसका प्रभाव कवियों पर बहुत पड़ा है। इनके भाव भी बड़े ऊँचे एवं गम्भीर हैं। मतिराम ने शृंगार और वीर दोनों रसों में मन-मोहिनी कविता की है। मधुर्य्य तो मानो इस कवि के बाँट ही पड़ा है, और इसके कई कवित्त ऐसे बढ़िया बन पड़े हैं कि देव को छोड़ और किसी भी कवि की रचना में समस्त हिन्दी-साहित्य खोज डालने पर भी, वैसे छन्द नहीं मिल सकते। यह महाकवि उन महानुभावों में से हैं, जिनकी रचनाओं के कारण हिन्दी-साहित्य का शर संसार में ऊँचा है, और सदा रहेगा। हिन्दी में चाहे और कुछ भी न हो, पर जब तक मतिराम जैसे सत्कवियों की कविता इसमें स्थिर है, तब तक उसका कोई भी तिरस्कार नहीं कर सकता। इनकी गणना नामी आचार्यों में है, और हमने हिन्दी-नवरत्न में इनको आदर के साथ स्थान दिया है।

अकबरी दरबार के समान महाराज छत्रसाल के दरबार का भी प्रभाव इस समय कविता पर बहुत अच्छा पड़ा। वीर-कविता का प्रचार हिन्दी में विशेषतया छत्रसाल और शिवाजी

कविता भी प्रशंसनीय है। सबलसिंह चौहान ने १७१८ से १७८१ पर्यन्त महाभारत की कथा सविस्तार दोहा चौपाइयों में लिखी। सरसदास और अनन्यशीलमणि इस समय के भक्त कवि थे। इस काल में यमक और अनुप्रास का बल और भी बढ़ा और भाषा की अच्छी अंग-पुष्टि हुई।

भूषण-काल

भूषण-काल (संवत् १७२१—१७५० वि०) में मतिराम, गदाधर भट्ट, कुलपति मिश्र, सुखदेव मिश्र (कविराज), कालिदास, रामजी, हरिकेश, घनश्याम, नेवाज और वृन्द परमोत्तम कवि हुए हैं। ऐसे-ऐसे भारी कवि इतने अधिकता से और किसी उपविभाग में अब तक नहीं हुए थे। भूषण का कविता-काल संवत् १७०५ के आस-पास प्रारम्भ होकर संवत् १७७२ वि० तक चला है, पर संवत् १७२० के पहले उनकी कविता प्रौढ़ नहीं तथा संवत् १७५० के पीछे उनके कुछ ही स्फुट छन्द मिलते हैं। इनके काल-नायक होने के कारण इनका वर्णन यहाँ होता है। इनका काव्य ऐसा उड़ुंड और प्रबल है कि उसका जोड़ ढूँढ़ना अत्यन्त कठिन है। वीररस को तो मानो इस महाकवि ने बिल्कुल अपना ही लिया है और उसका प्रायः पहला ही कवि होने पर भी यह उसमें अद्वितीय है। अवश्य ही कई अन्य कवियों ने भी उत्तररस में जोरदार कविता की है, पर इनका सामना कोई भी नहीं कर सकता। इनके वीर-वर्णनों को पढ़कर रोमांच हो आता है, और कादरों तक के जी में उत्साह उमड़ पड़ता है। भूषणजी ने जैसी उत्तम कविता की, वैसे ही शिवाजी और छत्रसाल जैसे पुरुषसिंह इनको नायक भी मिलगये थे, जिनके प्रताप और आतंक वर्णन करने में अतिशयोक्ति भी पीछे ही रह जाती है। जातीयता एवं हिन्दू-प्रेम इस कविरत्न में कूट-कूटकर भरा था।

घनश्याम ने वीर एवं शृंगार दोनों ही रसों की सानुप्रास, भावपूर्ण एवं उत्कृष्ट कविता की है। नेवाज (संवत् १७३७) ने शकुन्तला नाटक भाषा में कहा है, और संयोग-शृंगार में जैसी चटकीली रचना इसने की है, वैसी हिन्दी-साहित्य भर में कठिनाता से मिल सकेगी। यह बड़ा ही रसिया कवि था और कहीं-कहीं इसकी कविता में अश्लीलता भी आ जाती है। वृन्द (१७४२) ने नीति के दोहे अच्छे कहे और बालअली (१७४६) ने सखी भाव से भक्ति-पक्ष की कविता की।

देव

महाकविदेवदत्त उपनामदेव का जन्म संवत् १७३० में हुआ था और केवल षोडश वर्ष की बाल्यावस्था में इन्होंने अष्टयाम और भाव-विलास से उत्तम ग्रन्थ रच डाले थे, पर इनका वास्तविक कविता-काल संवत् १७५१ से माना गया है और वह प्रायः १८२५ तक चला। इस भारी काल के तीन उप-विभाग हैं, जिनमें से केवल दो की गणना पूर्वालंकृत हिन्दी के अन्तर्गत होती है, अर्थात् आदिम देव-काल (संवत् १७५१-७० वि०) और माध्यमिक देवकाल (संवत् १७७१-६० वि०) की।

आदिम देवकाल (७५१-७०) के नामी कवियों में छत्र, चैताल, आलम, शेख, लाल, प्रियादास, गुरु गोविन्दसिंह, चन्द, कवीन्द्र, श्रीधर, सूरति मिश्र और महाराजा अजीत-सिंह हैं।

जैसे संस्कृत में कालिदास कविता में प्रायः सबसे बड़े माने जाते हैं, वैसे ही हिन्दी-साहित्य में महाकवि देव का जोड़खोजना कठिन काम है। महात्मा तुलसीदास और सूरदास की उपमा सूर्य और चन्द्र से दी गयी है, पर अनेक हिन्दी-मर्मज्ञों का यह मत है कि ऐसी दशा में देवजी को नभ-मंडल मानना पड़ेगा,

के कारण हुआ। छत्रसाल की प्रशंसा हिन्दी के बहुत बड़े-बड़े कवियों ने मुक्तकंठ से की।

भूषण-काल का एक अच्छा सुकवि गदाधर भट्ट प्राचीन प्रकार का भक्त था। इसने कृष्ण-यश उत्कृष्ट छन्दों में गाया। कुलपति और सुखदेव मिश्र इस समय के भारी आचार्य्य थे। कुलपति ने बड़ी उत्तमता से गम्भीरता-पूर्वक साहित्य-रीति का वर्णन रस-रहस्य में किया। इनकी रचना भी बड़ी मनोहर किन्तु कुछ कठिन है। ये विहारीलाल के भांजे थे। सुखदेव मिश्र पिङ्गलाचार्य्य समझे जाते हैं। ये प्रथम कवि थे, जिन्होंने पूर्ण बल से पिङ्गल के ही विषय का वर्णन किया। इनके अन्य वर्णन भी अच्छे थे। इन दोनों कवियों की रचना बड़ी ही टकसाली होती थी। कालिदास त्रिवेदी भी इस समय के एक परम प्रसिद्ध कवि थे। अन्य विशद प्रबन्धों के साथ २१२ कवियों की रचनाओं का 'हज़ारा' नामक इन्होंने एक संग्रह भी बनाया, जिससे उन प्राचीन कवियों के नाम एवं यश स्थिर रहने में बड़ा सहारा मिला। इस प्रकार भविष्य-इतिहास-रचयिताओं को कालिदास ने बड़ी सहायता दी। ये प्रसिद्ध कवि कवीन्द्र के पिता और दूलह के बाबा थे। इनके छन्द भी मनोहर होते थे। रामजी भी एक चमत्कारी कवि थे। हरिकेश (१७३२) भूषण की भाँति इस समय के एक बड़े ही उद्दंड कवि होगये हैं। इनके बहुत छन्द नहीं मिलते, पर जितनी कविता इनकी मिली है, वह बड़ी ही चमत्कारिक है। इनका एक ग्रन्थ खोज में मिला है। इन्होंने वीर-प्रधान कविता की है। घनश्याम (१७३७) के केवल स्फुट कवित्त मिले हैं, पर उनमें अद्भुत जोर देख पड़ता है। इस समय के कवियों में यह कुछ विशेषता सी है कि उनकी रचनाओं में प्राबल्य की मात्रा बहुत अधिक पायी जाती है।

अंग स्थापित कर दिये हैं। निदान उपर्युक्त दो महाकवियों को छोड़ इनका पद हिन्दी-साहित्य में सभी से ऊँचा है। आजकल हिन्दी के कुछ लेखक विहारीलाल को देव से अच्छा कहते हैं। इस विषय पर हम आजकल देव-विहारी तुलना नामक ग्रन्थ बना रहे हैं, जिसमें इन दोनों महाकवियों के सात-सात सौ छन्द सामने रखकर मिलान किया जावेगा।

आदिम-देव काल (संवत् १७५१-७० वि०)

इस काल में छत्र कवि ने महाभारत के विषय को सूक्ष्म-तया विविध छन्दों में कहा, और वैताल बन्दीजन ने बड़ी ही सबल कविता की। ऐसी उद्दण्ड कविता हिन्दी में प्रायः कोई भी नहीं कर सका है। आलम और शेख इस समय के बड़े प्रेमी कवि हैं। इनकी रचनाएँ अनुराग रसार्णव में डूबी हैं। उनसे सच्चा प्रेम झलकता है। गोरेलाल उपनाम लाल कवि इस समय का परमोत्तम कथा-प्रासंगिक कवि है। इसने छत्र-प्रकाश नामक ललित ग्रन्थ में महाराज छत्रसाल का जीवन-चरित्र संवत् १७६५ पर्यन्त लिखा है। जान पड़ता है कि यह कवि इस समय के पीछे जीवित नहीं रहा। इस ग्रन्थ में दोहा-चौपाई छोड़कर कोई भी छन्द नहीं है, परन्तु इन्हीं से यह अंनमोल और मनो-हर बना है। लाल के बराबर उत्तम कविता में उद्दण्डता लाने में कोई भी कवि समर्थ नहीं हुआ है। भूषण, हरिकिस, शेखर और लाल, ये चारों बड़े उद्दण्ड लेखक हैं, परन्तु लाल का प्राबल्य इन सब में निकलता हुआ है, यद्यपि कुल मिलाकर ये भूषण के समान सत्कवि नहीं हैं। वैताल भी एक बड़े ही उद्दण्ड कवि है, परन्तु उनके कथन कुछ ग्रामीणता लिये हुये हैं, और लाल साधु भाषा में अद्वितीय उद्दण्डता लाये हैं। इस अमूल्य ग्रन्थ

जिसमें सूर्य, चन्द्र और तारागण उदय और अस्त होते एवं इधर-उधर परिभ्रमण किया करते हैं, पर जिसका कहीं ओर-छोर ही नहीं मिलता। उन लोगों का विचार है कि तुलसीदास और सूरदास अवश्य बड़े महात्मा थे; पर कविता-भार्ग में वे देवजी के पीछे ही रह जाते हैं। हम लोग यद्यपि इस मत के माननेवालों में नहीं हैं, तथापि हम यह भी नहीं कह सकते कि देवजी की कविता इन महात्माओं की रचनाओं से बहुत न्यून है। वास्तव में इन तीनों महापुरुषों की कविता में अलग-अलग कुछ ऐसे विशेष गुण हैं कि इनमें से किसी को घट बढ़कर कहना कभी मत-भेद से खाली नहीं हो सकता। यह निष्कर्ष सचमुच ही धन्य है, और इसी के रचना-बल से हिन्दी-साहित्य का पाया इतना ऊँचा है।

आजकल हम लोगों का मत है कि तुलसीदास हिन्दी-कवियों में सर्वोत्कृष्ट है, फिर सूरदास का नम्र आता है और तब देव का। देवजी ने ७२ या कम-से-कम ५२ ग्रन्थ बनाये हैं, जिनमें से २६-२७ का पता लग चुका है और नित्य नये नये ग्रन्थ मिलते जाते हैं। इनकी कविता माधुर्य और प्रसाद-गुणों से परिपूर्ण है। उसमें काव्यांगों का भरपूर उत्कर्ष है और अनुभव कूट-कूटकर भरा है। सभी के दो ही आँखें होती हैं; पर कवि कितना अधिक देख सकता है इसे अनुभूत काने के लिए देव महाराज की कविता देखनी चाहिए। क्या मानुषीय प्रकृति, क्या अनेक प्रकार के भाव, क्या प्राकृतिक वर्णन और क्या भाषा की गम्भीरता, सधुरता एवं परिपक्वता, सभी बातों में देव की प्रभा देखते ही बनती है; उसका वर्णन कर सकना दुस्तर है। भाषा को किसी कवि ने इतना भूषित नहीं किया है। इन्होंने दशांग काव्य पूर्णतया कहा है, और उसके अतिरिक्त काव्य के अनेक नये

नन्द आसक्त थे। उसकी प्रशंसा में इन्होंने कितने ही उत्कृष्ट छंद रचे। श्रीपति दशांग कविता के भारी आचार्य्य थे। इन्होंने भी कुलपति की भाँति बड़ी गम्भीरता से गीति-वर्णन किया। इनकी चोरी बड़े-बड़े कवियों ने की है। भाषा के परमोत्कृष्ट आचार्यों में इनकी भी गणना है। महाराज नागरीदास (सावन्तसिंह) कृष्णगढ़ के महाराज थे, परन्तु वृन्दावन और कविता के ये ऐसे प्रेमी थे कि राज छोड़कर भजनानन्द और साहित्य-रचना में प्रवृत्त हुए। इन्होंने सौरकाल के ऋषि कवियों की भाँति बड़ी ही भक्तिपूर्ण रचना में कृष्ण भगवान् का शृंगारात्मक वर्णन किया। इनकी कविता तल्लीनता का पूरा परिचय देता है और प्रशंसनीय है। भूधरदास एक प्रसिद्ध जैन कवि थे। इन्होंने साधारण ग्रन्थों के अतिरिक्त पुष्प-पुराण नामक एक जैन पुराण की भी रचना की, जो इस मत में बड़ी पूज्य दृष्टि से देखी जाती है। कृष्ण कवि विहारीलाल के पुत्र थे और इन्होंने अपने पिता की सतसई पर प्रति दोहे का भाव लेकर अच्छे सवैया छन्द बनाये। इनकी रचना प्रशंसनीय है। जोधराज ने प्राचीन भाषा में हम्मीर रासो नामक एक भारी और सराहनीय ग्रन्थ रचा, जिसमें वर्णनों की पूर्णता का कुछ स्वाद मिलता है। गंजन कवि ने कमरुद्धीं खों की प्रशंसा एवं शृङ्गार रसमें बहुत अच्छे-अच्छे छन्द कहे हैं। इनका ग्रंथ बहुत ललित है। उसमें अनुप्रास एवं सबल भावों की बहार है। महबूब ने भी जोरदार कविता की और प्रीतम ने २२ छन्दों में केवल खटमलों का हास्य-पूर्ण अनमोल वर्णन किया। हरिचरणदास एक सुकवि और भारी टीकाकार थे।

भाषा

ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उससे विदित होगा कि

में कविता-सम्बन्धी प्रायः सभी सद्गुण वर्त्तमान हैं। युद्धों का ऐसा उत्तम वर्णन बहुत स्थानों पर न मिलेगा। इस कवि ने उत्तमता में अपनी रचना गोस्वामीजी से मिला सी दी है, यद्यपि इन दोनों कवियों के ढंगों में बड़ा अन्तर है। लाल एक बड़ा ही अनमोल कवि हैं। गुरु गोविन्दसिंह सिक्खों के दसवें बादशाह थे। इन्होंने सिक्खों में जातीयता का बीज बोया। इनको कविता भी साधारणतया अच्छी थी। कवींद्र (सं० १७६२ वि०) ने नायिका-भेद का वर्णन किया और कुछ उद्दंड वीर-छन्द भी अच्छे रचे। इनकी भी कविता परम ललित है। सूरति मिश्र उत्तम कवि, उत्तम टीकाकार और उत्तम गद्य-लेखक हैं। आपने कई गम्भीर ग्रंथ रचे हैं। महाराजा अजीत-सिंह महाराजा जसवन्तसिंह के पुत्र और एक सुकवि हैं। प्रियादास ने संवत् १७६६ वि० में नाभादास कृत भक्त-माल की एक उपयोगी छन्दोबद्ध टीका रची। इसने महात्माओं के चरित जानने में समाज का अच्छा उपकार किया। आदिम देव-काल में विशेषतया देव, लाल, आलम और कवींद्र उत्कृष्ट कवि थे, तथा भूषण, मतिराम, हरिकेश आदि भी वर्त्तमान थे।

माध्यमिक देव काल

(संवत् १७७१-६० वि०)

माध्यमिक देवकाल में घनानन्द, श्रीपति, नागरीदास (महाराजा), भूधरदास, कृष्ण, जोधराज, गंजन, महबूब, प्रीतम और हरिचरणदास प्रसिद्ध कवि थे। घनानंद (संवत् १७००-६८ वि०) ने भक्ति और प्रेम-रसाणव की अटूट लहरें लहराई हैं। ये बड़े ही प्रेमी पुरुष थे और इनकी रचना बड़े-बड़े कवियों को मोहित करती है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र घनानन्द की रचनाओं के बड़े प्रेमी थे। सुजान नामक एक सुन्दरी पर घना-

ठाकुर, बोधा, सीतल, दास, दूलह, सूदन, इत्यादि अनेक कवियों ने अलंकृत किया हो, उसका यों अपमान करना किसी ज्ञाता पुरुष को शोभा नहीं देता। अस्तु। इस समय में भाषा की उन्नति प्रायः चरमसीमा पर पहुँच गयी। दूषणों को न आने देकर, एवं भाव न बिगाड़कर, कवियों ने भाषा को यथासम्भव पूर्णतया अलंकृत कर दिया और उसमें सभी प्रकार से परिपक्वता आ गयी। गद्य के कुछ लेखक अवश्य हुए, पर इस काल तक उसकी साहित्य में गणना नहीं हो सकी। इस काल में वीर-काव्य और विविध विषयों की चाल हिन्दी में भली भाँति पड़ गयी और अनेक शूर-वीरों के प्रभाव के सम्मुख सम्भव था कि शृंगार-काव्य की प्रथा मन्द पड़ जाती, पर शृंगार-तरु की जड़ें हमारी भाषा भूमि में बहुत गहरी पहुँच चुकी थीं, सो वे न हिल सकीं और शृंगार की भी कविता का प्रभाव बना रहा, वरन् आगे चलकर वह और भी प्रचल पड़ गया। यों तो भाषा के प्रथम आचार्य केशवदास जी हैं, पर नायिका-भेद और रीति-ग्रन्थों के लिखने की परिपाटी ठीक-ठीक इसी काल में पड़ी। इसी काल में कालिदास त्रिवेदी ने 'हजारा' नामक प्रसिद्ध संग्रह-ग्रन्थ लिखा और टीकाएँ रचने की चाल पड़ी। सारांश यह कि इस समय को हम हिन्दी का राम-राज्य कह सकते हैं।

चौथा अध्याय

उत्तरालंकृत हिन्दी (संवत् १७६१-१८८६ वि०)

अभी महाकवि देव का ही समय चला जाता था, पर थोड़े दिनों पीछे (प्रायः संवत् १८२५ में) उनका शरीर पंचत्व को प्राप्त

यह पूर्वालंकृत काल (संवत् १६८१-१७८६ वि०) हिन्दी-भाषा के लिए कल्पतरु हो गया है। जितने सुकवि जिस अधिकता के साथ इस चमत्कारिक समय में हुए उतने और किसी भी काल में नहीं देख पड़ते। इसमें सन्देह नहीं कि प्रौढ़ माध्यमिक हिन्दीवाला (अर्थात् सौर-तुलसी) काल भी, बड़ाही विशद हुआ है, पर कहना ही पड़ता है कि यह हिन्दी-काल कुल मिलाकर उससे भी बड़ा-बड़ा है। उसमें चार कवि परमोत्तम हुए, अर्थात् तुलसी, सूर, केशव और हितहरिवंश; पर इस काल ने छः वैसेही कवि उत्पन्न करके दिखला दिये, जिनमें देव, बिहारी, भूषण, मतिराम, सेनापति और लाल गिने गये हैं। प्रौढ़ माध्यमिक काल के तीन कवि नवरत्नोंवाले हैं और एक प्रथम कक्षा का, और इधर चार नवरत्नों के और दो प्रथम श्रेणी के वर्तमान हैं। इन निकलते हुए कवियों को छोड़कर दोनों कालों के शेष कवियों की ओर ध्यान देने से इनमें जो भेद है, वह तत्कालही प्रकट हो जायगा। दूसरे काल के हरिकेश, नेवाज, चिंतामणि, कुलपति, कविराज, रामभुनाथ, घनश्याम, नागरीदास, बैताल, घनानन्द, श्रीपति, गंजन इत्यादि के सामने पहले (सौर-तुलसी) काल के तीन चार कवियों से अधिक कदापि नहीं गिनाये जा सकते। कुल मिलाकर यह दूसरा काल हिन्दी-साहित्य के लिये एकदम अद्वितीय है। ऐसी दशा में आश्चर्य के साथ कहना पड़ता है कि कतिपय विद्वानों ने इसी समुज्ज्वल काल के एक बृहत् विभाग को दूसरी श्रेणी के कवियों और टीकाकारों का समय (The age of second-rate poets and commentators) बतलाया है! जिस काल में देव की प्रायः समस्त रचनाएँ आ जायें और जिसमें भूषण, मतिराम, लाल, तथा ऊपर लिखे हुए अनेक अन्य कवि काव्य कर रहे हों, एवं पीछे से जिसको

तत्र रीति पर भी वे परम प्रशंसनीय हैं। इनके दोहों में भाषा और भाव दोनों का सौन्दर्य परम प्रशस्त है; एवं संक्षिप्त गुण दर्शनीय है। दलपतिराय और वंसीधर मिलकर काव्य करते थे। इन्होंने भाषा-भूषण की टीका बड़ी ही विशद बनायी और कविता अच्छी की। शिवनारायण ने गाज़ीपुर में एक पंथ चलाया और १० ग्रन्थानिर्माण किये। सोमनाथ (संवत् १७६४ वि०) इस समय का भारी कवि और आचार्य्य है। इसने निर्दोष कविता की और काव्यांगों का बहुत साफ़ वर्णन किया। रस-लीन (संवत् १७८४-६६ वि०) ने दोहों में रस-विषय को सांगो-पांग वर्णित किया। इसके दोहे बड़े ही मनोहर होते थे। रघुनाथ (१७६६) भाषा-काव्य में अलंकारों के नामी आचार्यों में से हैं। यद्यपि इनकी भाषा वैसी बढ़िया न थी, तथापि कविता इन्होंने अच्छी एवं सारगर्भित की और खड़ीबोली में भी छन्द रचे। ललितकिशोरी और ललितमोहनी ने ब्रजभाषा गद्य में एक ग्रन्थ बनाया है, जिसमें कुछ-कुछ खड़ीबोली का भी ढंग आ जाता है।

चाचा वृन्दावनहित (संवत् १८०० वि०) इस समय में एक परम प्रशंसनीय और भारी कवि हो गये हैं। यह महात्माजी श्रीस्वामी हरिवंशहित के सम्प्रदाय में थे। सुना जाता है कि इनकी सवा लक्ष वाणी वर्तमान है। कोई साढ़े १८ हजार पद इनके हमने भी देखे हैं। स्मरण रहे कि महात्मा सूरदास के चार-पाँच हजार पदों से अधिक नहीं मिलते। चाचाजी की भाषा परम ललित और मधुर है। यह कृष्णानन्द में डूबे हुए थे। कुल मिलाकर इनका पद हिन्दी-काव्य में बहुत ऊँचा है। गिरिधर कविराय ने कुंडलिया छन्दों में दैनिक व्यवहारों और साधारण नीति अत्यन्त यथेष्टता के साथ कही हैं। नूर मुहम्मद ने जायसी की भाषा में उसी ढंग की 'इन्द्रावती' नामक

हुआ और हिन्दी-साहित्य की कुछ-कुछ अवनति हो चली। कति-पय अन्य कवियों ने अवश्य ही उत्कृष्ट कविता की, पर उनके पीछे यह बात न रही। तो भी वेनी-प्रवीन, शेषर, वृन्दावन और प्रताप के होते हुए भाषा की न्यूनता नहीं होने पाई।

इस वृहत्काल को भी हम पाँच उपविभागों में विभक्त करते हैं। पहला अंतिम देव-काल, जिसको हम दास-काल कहेंगे, (क्योंकि इसमें दास-काल की ही बातों की विशेषता पाई जाती है (संवत् १७६१-१८१० वि०), दूसरा सूदन-काल (संवत् १८११-३० वि०), तीसरा रामचन्द्र का समय (संवत् १८३१-५५ वि०), चौथा वेनी-प्रवीन का समय (संवत् १८५६-७५ वि०) और पाँचवाँ पद्माकर-काल (संवत् १८७६-१८८६ वि०)।

दास-काल

दास-काल (संवत् १७६१-१८१० वि०) में राजा गुरुदत्त-सिंह, दलपतिराय, बंसीधर, शिवनारायण, सोमनाथ, रघुनाथ, रसलीन ललितकिशोरी व ललितमोहनी, चाचा हितवृन्दावन, गिरिधर कविराय, नूर मुहम्मद, ठाकुर, दूलह, शिव, गुमान, कुमारमणि भट्ट, सरजूराम, शम्भुनाथ मिश्र, भगवन्तराय खीची और शिवसहाय सुकवि हैं।

भिखारीदास (उपनाम दास) का कविता-काल संवत् १८७५ से १८०७ वि० तक माना गया है। यह बड़ा भारी कवि था और इसकी भाषा खूब मधुर है। चाहे किसी दूसरे का भी भाव हो, पर इनके वर्णन कर देने के पीछे वह भाव प्रायः इन्हीं का सा हो जाता था। इन्होंने कई ग्रन्थ रचे हैं, जिनमें शृंगार-निर्णय और काव्य-निर्णय प्रधान हैं। यह भाषा-काव्य के भारी आचार्य्य हैं। राजा गुरुदत्तसिंह ने शतसई बहुत सोहावनी कही है। इनके अनेक दोहे बिहारी से बिलकुल मिल जाते हैं, एवं स्व-

नायिकाभेद की प्रथा दृढ़तर होगई, एवं शृंगार कविता की ओर कविजनों की प्रवृत्ति विशेषतया बढ़ी।

सूदन-काल

सूदन-काल (१८१०—१८३०) में मुख्य कविगण के नाम ये हैं:—बोधा, सहजो बाई, गणेश, मनबोध भा, अक्षर अनन्य, हंसराज, वैरीसाल, किशोर, पुखी, रतन, दत्त, नाथ, ब्रज गसीदास, शिवनाथ द्विवेदी, मनीराम मिश्र, मनभावन और तीर्थराज।

बोधा एक बड़ा ही प्रेमी कवि है और इसकी कविता बड़ी ही सरस एवं प्रेमपूर्ण है। ऐसी सूक्ष्म दृष्टि बहुत कम कवियों में पाई जाती है। बोधा ने भाव और भाषा दोनों का अच्छा चमत्कार दिखाया है और सब वर्णनों में प्रेम ही प्रधान रखा है। इनका कविता-काल १८१० से प्रारम्भ होता है। सूदन एक बहुत बढ़िया कथा प्रासंगिक कवि हैं। इन्होंने भरत-पूर के महाराजकुमार सूरजमल का यश उत्कृष्ट कविता में गाया। इन्होंने ब्रजभाषा में कविता की, परन्तु अन्य कई भाषाओं का भी यत्र तत्र व्यवहार किया। इनकी रचना परम गम्भीर और ओजस्विनी है। इन्होंने १८१० के पीछे कविता की। देवीदत्त ने वैतालपच्चीसी बनाई। सहजो बाई (१८१५) ने भगवद्भक्ति अच्छी कही है। सुन्दरि कुँवरि की भी कविता रसवती है। मनबोध भा (१८२०) विहार के एक अच्छे नाटककार थे। अक्षर अनन्य (१८२०) भारी धर्मप्रचारक होगये हैं। बल्लारी हंसराज (१८२०) पन्नावाले ने सनेहसागर में बड़ी सरस और लुभावनी कविता में कृष्णकथा कही। वैरीसाल (१८२५) अलंकारों के एक भारी आचार्य्य समझे जाते हैं। इन्होंने प्रायः दोहा में ही रचना की है, पर वह सर्वथा प्रशंसनीय है। किशोर

प्रेम-कहानी लिखी। ठाकुर कवि ने सवैयाओं में बड़ी ही एक-साली कविता की। इसकी कविता हृदय पर चोट पहुँचाने वाली तथा सच्चे प्रेम से परिपूरित है। यह कवि औब्वल नम्बर का रसिया था और इसकी कहावत ऐसी मधुर और सरस है कि उसके पढ़ने में उत्तरोत्तर आनन्द बढ़ता ही जाता है। इसके सवैया देव के छंदों से पूरी टंकर लेते हैं और भाव प्रायः सदाही नवीन एवं परम चमत्कारी होते हैं। यदि इसकी अधिक कविता मिल जाय, तो शायद यह महा-कवि नवरत्नवालों तक का सामना कर सके। अब भी इसका स्थान प्रथम कक्षा के कवियों में ऊँचा है। गुमान मिश्र (संवत् १८०१ वि०) ने नैपथ्य-काव्य का विविध छन्दों में उल्था किया।

दूलह त्रिवेदी (संवत् १८०२ वि०) की गणना हिन्दी के नामी आचार्यों और कवियों में है। अलंकार के ये महाशय मुख्य सूत्रकार हैं। जैसे पिंगल में मनीराम हुए हैं, वैसे ही इस विषय (अलंकारों) को अत्यन्त सूक्ष्म रीति से लक्ष्णों और उदाहरणों सहित दूलह ने खूबही साफ कर दिया है। सरजूराम ने दोहा-चौपाइयों में जैमिनी-पुराण की साधारणतया अच्छी रीति से रचना की। शम्भुनाथ मिश्र ने नायिका-भेद-विषयक कविता की। भगवंतराय खीची कवियों के कल्पवृक्ष एवं स्वयं सुकवि थे। शिवसहायदास ने पखाने लिखे हैं। पखाने शब्द उपाख्यान का अपभ्रंश है। ऐसी कविता में लोकोक्तियाँ कही जाती हैं। इनके साथ दास का समय समाप्त होता है। अवश्य ही इसमें नवरत्नोंवाला कोई कवि नहीं हुआ (यद्यपि यह स्मरण रखना चाहिए कि इसमें स्वयं देवजी कविता करते रहे थे), पर प्रथम श्रेणी के दो भारी कवि तथा अन्य कई एक उत्कृष्ट लेखक थे। कुल मिलाकर यह समय समुज्ज्वल था। इस काल में आचार्य बहुत हुए और

दास काल की यह समानता नहीं कर सकता, परन्तु फिर भी अच्छे कवियों का इसमें अभाव न था ।

रामचन्द्र-काल

रामचन्द्र-काल (१८३१-१८५५) में मुख्य कवियों के नाम ये हैं:—चंदन, शीतल, कलानिधि, विश्वनाथ, जनगोपाल, मंचित, मधुसूदनदास, नीलसखी, देवकीनंदन, मनियार, हृदयनिवास, महाराजा रामसिंह, भान, हठी, थान, बेनी और भौन । रामचन्द्र पंडित (१८५०) का चरणचंद्रिका नामक केवल एक ग्रंथ देखने में आया है, परन्तु उसी में इन्होंने चकाचौंध कर देने वाला पूरा चमत्कार दिखा दिया है । इसमें केवल ६२ छन्दों द्वारा श्री देवी जी के चरणों का वर्णन बड़ी ही ओजस्विनी भाषा में किया गया है और उपमा रूपकादि द्वारा कवि ने इसमें सैकड़ों विषयों का ज्ञान पूरी तरह प्रदाशत कर दिया है । चरणा क छोटे से विषय पर ऐसा रचना देख कर इस कवित्व शक्ति की मुक्तकंठ से प्रशंसा करनी पड़ती है । चंदन (संवत् १८३० वि०) ने बहुत से उत्कृष्ट और रुचिकर ग्रन्थ लिखे हैं । इनका कविता सरस और मनोहर है । ये फ़ारसी के भी अच्छे कवि थे, जिसमें अपना नाम संदल रखते थे । एक बार शाह अवध ने इन्हें बुलाया, पर ये वहां जाने पर सहमत न होकर श्री काशी जी चले गये । सीतल (१८३०) ने अपनी पूरी रचना खड़ी बोली में की । वह बड़ी चटकीली तथा उत्तम है । इनसे पहले और किसी कवि ने ऐसी उत्तम भाषा में खड़ी बोली की रचना नहीं की और न अब तक भी बहुत लोग इनके समान रचना करने में समर्थ हो सके हैं । इनका रचा हुआ चार भाग गुलज़ार चमन हमारे पास है । इन्होंने

(१८२५) ने नायिकाभेद और षट् ऋतु की प्रशंसनीय कविता की। इनकी भाषा में मिलित वर्ण कम हैं और अनुप्रास का इन्होंने विशेष ध्यान रक्खा। रतन कवि (१८२६) अलंकारों के आचार्य हैं। इनका रचना-चमत्कार बहुत ऊँचे दर्जे का है। दत्त (१८२७) ने लालित्य लता नामक उत्कृष्ट अलंकारग्रन्थ रचा। कहते हैं कि ग्वाल और पद्माकर से इनकी नोकझोंक रहती थी, परन्तु ये दोनों कवि इनसे कुछ पीछे के हैं। सम्भव है कि कुछ काल तक ये तीनों कवि समकालीन रहे हों। इनकी रचनायें समकक्ष हैं। इनमें शब्द-लालित्य की प्रधानता है। ब्रजवासीदास ने ब्रजविलास नामक परम प्रसिद्ध ग्रंथ बनाया। यह भी रामायण के पीछे बहुत पढ़ा जाता है, यद्यपि इसकी कविता साधारण है। शिवनाथ ने नायिकाभेद वर्णन किया, जिसमें सानुप्रास कविता है। संवत् १८२८ से गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेव महाभारत का प्रसिद्ध छन्दोबद्ध उल्था करने लगे, जो संवत् १८८५ के लगभग समाप्त हुआ। यह बड़ा भारी ग्रंथ है और इससे भाषा-भाण्डार के कथा-विभाग की बहुत अच्छी पूर्ति हुई है। यह ग्रंथ बड़ा ही रोचक है। इन तीनों कवियों ने अपनी रचना-शैली इसमें दिल्कुल मिला दी है। ये कवि इस ग्रंथ के कारण बड़े धन्यवाद के योग्य हैं। गोकुलनाथ ने अन्य विषयों के भी कई सुन्दर ग्रंथ बनाये हैं। मनीराम मिश्र (१८२६) पिंगल के बहुत बड़े आचार्य हैं। इन्होंने सूत्रों की भांति बहुत थोड़े छन्दों में पिंगल का सारा विषय कह दिया। इनकी कविता सर्वतोभावेन प्रशंसनीय है। मनभावन और तीर्थराज भी साधारणतया अच्छे शृंगारी कवि थे। सूदन-लाल के कवियों में नायिका भेद पर कविता करने का विशेषतया चाव रहा। इस समय में बहुत ऊँचे दर्जे के कवि अधिक नहीं हुए और

उत्तरालंकृत हिन्दी] बेनी प्रवीन, जसवन्तसिंह, गणेश । ५३

बेनी बंदीजन (१८४६) ने कई ग्रन्थ बनाये । इनके भंडौआ बड़े ही उद्गूण्ड तथा भावपूर्ण होते थे । वह संख्या में भी अधिक हैं । अन्य कविता भी यह अच्छी करते थे । मोन भाट (१८५१) की भी कविता रसपूर्ण होती थी । कृष्णदास ने (१८५३) माधुर्य लहरी नामक एक प्रशंसनीय ग्रन्थ बनाया जिसमें उत्कृष्ट कविता में कृष्ण-कथा कही गई है । इस समय में चन्दन, मंचित, सीतल, रामचन्द्र और थान भारी कवि थे तथा और भी उत्कृष्ट कवि वर्तमान थे । सीतल की समानता अँगरेज़ी के कवि बाईरन से की जा सकती है । यह छोटा सा समय भाषा-साहित्य के लिये बड़े ही गौरव का था ।

बेनी-प्रवीन-काल

बेनी-प्रवीन-काल (१८५६—१८७१) के प्रधान कवियों में राजा यशवंतसिंह तेरवा, गणेश, क्षेमकरण, भंजन, करण, सम्मन, सून, लल्लूलाल, सदल मिश्र, गुरदीन पांडे, सुवंश शुक्ल, महाराजा मानसिंह, महाराजा सुंदरसिंह, ललकदास, सागर, खुमान, धनीराम और महाराजा जैसिंह का नाम लिया जा सकता है ।

बेनीप्रवीन (१८७४) लखनऊ-निवासी ऊंचे के बाजपेयी थे । इनकी रचना बड़ी सरस और सुहावनी है और भाषा में मिलित वर्ण बहुत कम आने पाये हैं । प्राकृतिक वर्णन भी इन्होंने अच्छे किये । इनकी रचना विशेषतया शृंगार-पूर्ण है । राजा जसवंतसिंह तेरवा-नरेश (१८५१) ने नायिक भेद का अच्छा ग्रन्थ बनाया । गणेश (१८५७) ने वाल्मीकीय रामायण के कुछ अंशों का अनुवाद किया । करण की कविता में काव्य-सामग्री प्रचुरता से मिलती है । सम्मन (१८६०) कृत नीति के दोहे शिक्षा-पूर्ण हुए हैं । लल्लूलाल (१८६०)

लालविहारी को ईश्वर मान कर उसी की प्रशंसा में अपनी सब रचना की है, जो सर्वथा प्रशंसनीय तथा दर्शनीय है। जन गोपाल (१८३३) की भाषा और भावों में जो गम्भीरता पाई जाती है, वह सिवा परमोत्तम कवियों के और कहीं नहीं देख पड़ती। मंचित बुँदेलखण्डी (१८३६) ने कृष्णायन तथा सुरभी दानलीला नामक दो परमोत्कृष्ट ग्रंथ रचे। कृष्णायन कृष्णखंड के आधार पर बढ़िया भाषा में रचा गया है और उसकी रचना कथा प्रासंगिक ग्रन्थों में तुलसीकृत रामायण के ढंग पर की गई है। उत्तमता में भी वह दो चार को छोड़ प्रायः सभी कथा प्रासंगिक ग्रन्थों से श्रेष्ठतर है। सुरभी दानलीला भी मनोहर भाषा में सरस ग्रंथ है। यह महाकवि लाल तथा सेनापति का समकक्ष है। मधुसूदनदास (१८३६) ने रामचरित नामक एक भारी ग्रंथ दोहा चौपाइयों में बनाया जो भक्तिभाव से पूर्ण तथा सुपाठ्य है। नील सखी की चाणी (१८४०) बड़ी ही सरस और भावपूर्ण है। देवकीनंदन (१८४१) ने नायिका-भेद तथा अलंकारों का गम्भीर एवं कठिन वर्णन किया। इनकी रचना प्रशंसनीय है। इन्होंने कुछ कुछ कूट कविता भी की। मनियारसिंह और कृपानिवास ने भी रचना चमत्कारिक की है। हठी (१८४९) ने बड़ी ही सरस और मधुर कविता रची। थान (१८४८) इस समय का बड़ा ही उत्कृष्ट कवि हो गया। यह चंदन कवि का भानजा था। इस की रचना में भाषा तथा भावों का बहुत अच्छा चमत्कार देख पड़ता है। इन्होंने अपनी कविता में काव्यांगों खेलाने का पूर्ण प्रयत्न किया। इनके ग्रंथ में जो मुख्य काव्यांग जहाँ पर आ गया है उसका लक्षण भी उसी जगह लिख दिया गया है। इनकी रचना में अच्छे छन्द बहुतायत से पाये जाते हैं।

पद्माकर की कविता-काल बहुत समय से चला आता था, परन्तु कालक्रमानुसार हमने पद्माकर को उनके अंतिम काल का नायक माना है। इस समय कई बड़े बड़े कवि वर्तमान थे, परन्तु पद्माकर की ख्याति सबसे अधिक थी। इन्होंने कई प्रकृष्ट ग्रंथ बनाये, जिनमें केवल “जगद्विनोद” शृंगाररस का है, परन्तु इनकी रचना में यही सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसमें रसभेद तथा भावभेद की विस्तृत वर्णन साफ उदाहरणों द्वारा किया गया है। इनकी गंगालहरी तथा प्रबोधपञ्चासा भी अच्छे हैं। पद्माकर ने अपनी रचना में शब्द-चमत्कार लाने का सबसे अधिक ध्यान रक्खा, परन्तु भावकी ओर तादृश निगाह नहीं की अंगरेजी के कवि सर वाल्टर स्कॉट से इनकी समानता की जा सकती है। इन दोनों कवियों ने बड़ी उड़ती हुई भाषाओं में रचनायें की हैं। देवात् इन दोनों की मृत्यु भी एक ही संवत् में हुई। पद्माकर ने शृंगार, वीर तथा भक्ति, इन तीनों विषयों पर मनोहर ग्रंथ रचे हैं। सर्वसाधारण भाषाकाव्यप्रेमी इन्हें बड़े बड़े कवियों का समकक्ष समझते हैं। कविता के कारण पद्माकरजी का सदैव अच्छा सम्मान रहा और कविता ने इनको कामधेनु का फल दिया। ये उत्कृष्ट कवि थे।

वृन्दावनजी (१८७५) जैन कवियों में अच्छे माने गये हैं। रामसहाय ने (१८७७) दोहों में रामसतसई नामक परमोत्तम शृंगार ग्रन्थ रचा। इस सरस कवि ने बिहारी के पैरों पर पैर रखे हैं और दो तीन सौ दोहे तो ऐसे बढ़िया रचे हैं, कि यदि वे बिहारी के दोहों में मिला दिये जायें, तो बिहारी के दोहे याद न रखने वाला उन्हें शायद पृथक् न कर सके। इनकी रचना बड़ी ही मधुर है। इन्होंने अन्य ग्रंथ भी बनाये हैं। ग्वाल (१८७६) ने बहुत से बढ़िया ग्रंथों की रचना की, जो सरस, मधुर और प्रशंसनीय हैं। भाषा-चम-

ने खड़ी बोली और ब्रज भाषा मिश्रित गद्य में कई ग्रन्थ रचे और सुदल मिश्र ने (१८६०) शुद्धतर खड़ी बोली में नासकेतोपाख्यान की रचना की। वर्तमान गद्य-प्रणाली को इन्हीं दोनों ने परिमार्जित तथा वर्द्धित किया था। सुवंश शुक्ल (१८६२) के कई बढ़िया ग्रंथ हैं। ललकदास ने (१८७०) सत्योपाख्यान नामक दादा चोपाइयों में रामकथा-विषयक एक सोहावना ग्रंथ रचा, जिसमें बालकांड की कथा बड़े विस्तार के साथ वर्णित है। सागर बाजपेयी (१८७०) ने रसमयी रचना की है। इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिला, परन्तु संग्रहों में इनके बहुत से मनोरंजक सवैया देखे जाते हैं। धनीराम (१८७०) भाट प्रसिद्ध कवि सेवक के पिता थे। इनकी रचना मनोहर है। जैसिह महाराजा रीवाँ ने (१८७३) कई अच्छे ग्रंथ बनाये। इस समय में गद्य-काव्य की कुछ विशेषता होने लगी। जिस प्रकार देवकाल से दासकाल कविता की उत्तमता में कुछ घटता सा रहा, उसी तरह उसके पीछे भी क्रमशः कवित्व शक्ति का कुछ कुछ हास सा होता चला आया है। यद्यपि गणना में कविजन विशेषता से विद्यमान रहे और यत्र तत्र अच्छे कवि भी देख पड़ते हैं तथापि अब कविता का वह पूर्ववाला मनोहर रूप नहीं दर्शित होता। केवल रामचन्द्रकाल इस कथन के बाहर है।

पद्माकर-काल

पद्माकर-काल (१८७६—१८८६) में वृन्दावन, महाराज, रामसहायदास, ग्वाल, चन्द्रशेखर बाजपेयी, प्रेमसखी, प्रताप, श्रीधर, दीनदयालगिरि, महाराज बलवानसिह, द्विज कवि, गुरदत्त शुक्ल और महत युगुलानन्य शरण प्रधान कवि हुए हैं।

यह उत्तरालंकृत काल ऐसे समय आरम्भ हुआ, जब हिन्दी की पूर्ण उन्नति हो चुकी थी और वह अच्छे प्रकार से अलंकृत भी थी। इन कारणों से उसके अधिकतर उन्नत होने का विशेषतया मौका नहीं था। फिर भी पद्याकर आदि कवियों ने उसके अधिकाधिक सुसज्जित करने का प्रयत्न नहीं छोड़ा, जिसका फल यह हुआ कि कवियों का ध्यान भाषा की ओर विशेषतया होने लगा और भाव की ओर कम। यह बात पूर्वकाल में नहीं हुई थी। इस उत्तर काल में प्रथम श्रेणी के ठाकुर आदि दो ही तीन कवि हुए, परंतु अन्य ऊँची श्रेणियों में बहुत से कवि थे। इसमें नायिका-भेद, नखशिख, इत्यादि पर ग्रंथ लिखने की परिपाटी दृढ़ होगई और आचार्यों की संख्या बहुत बढ़ी। उत्कृष्ट कवियों के होते हुए भी इस समय नवरत्न का एक भी कवि नहीं हुआ, सो अंतिम दोनों कालों की अपेक्षा यह समय कुछ फीका सा जंचता है, यद्यपि नवरत्न और प्रथम श्रेणी को छोड़ कर शेष श्रेणियों के कवि इसमें बहुत अधिकता से हुए। इस काल के आरम्भ होने से थोड़े ही दिन पीछे भारत में कादरता का सिकका जमा। अतः वीरकाव्य इस समय पूर्वालंकृत काल से कम हुआ और विविध विषयों के वर्णनों की परिपाटी ने भी समुचित उन्नति नहीं पाई। सारांश यह कि जो अलौकिक उन्नति पूर्वालंकृत-काल में प्रारम्भ हुई थी, वह उत्तर-काल में विशेषतया घटी तो नहीं, परंतु आगे भी न बढ़ सकी। उत्तर-काल में भाषा-सम्बन्धी एक यह उन्नति अवश्य हुई कि खड़ी बोली के पद्य और गद्य दोनों का मान बढ़ा। रघुनाथ ने खड़ी बोली पद्य का औरों की अपेक्षा कुछ विशेष व्यवहार किया। सीतल ने केवल उसी में रचना की। इसी प्रकार लल्लू जी लाल तथा सदल मिश्र से गद्य की प्रथा ने

त्कार पर इनका भी ध्यान विशेषतया रहता था। चन्द्रशेखर वाजपेयी ने १८७७ से १९३२ पर्यंत काव्य-रचना की। इन्होंने शृङ्गाररस के उत्तम छन्द बनाये तथा हमीर हठ नामक वीर-रस-प्रधान एक बहुत ही अनूठा एवं सबल ग्रन्थ रचा। इनकी वीर-कविता में बल एवं उद्दण्डता की मात्रा बहुत विशेष है। इन्होंने बड़ी सजीव तथा प्रथम श्रेणी की रचना की है। प्रतापसाहि (१८८०) की भाषा मतिराम की भाषा से बहुत मिल जाती है और उत्तम छन्दों की संख्या भी इनकी सव्यंग्य रचना में बहुत विशेष है। उसमें उद्दण्डता भी पाई जाती है। ये काव्यांगों के एक अच्छे ज्ञाता थे। कुल मिला कर प्रताप एक बड़ा ही प्रशंसनीय कवि है। बाबा दीनदयालगिरि (१८८८) भी काशी के सुकवि थे। इन्होंने अन्योक्तियाँ अच्छी कहीं हैं। काशिराज महाराजा बलवान-सिंह ने (१८८६) चित्र-काव्य बहुत ही प्रशंसनीय लिखा है। इनकी पुस्तक में सात सात अर्थ तक के छन्द हैं, परन्तु भाषा उनकी तनिक भी बिगड़ने नहीं पाई है। द्विज कवि मन्नालाल ने अच्छा संग्रह तैयार किया और गुरुदत्त शुक्ल ने अन्योक्ति रचना प्रशंसनीय की। महंत युगुलानन्य शरण ने बहुत से बड़े बड़े तथा प्रशंसनीय ग्रंथ रचे। इनका श्रम सराहनीय तथा अनुकरणीय है।

विचार

पश्चात्तर से कुछ पहले कवियों की लेखनी कुछ मंद सी पड़ गई थी, परन्तु इस छोटे १५ साल के समय में बहुत से श्रेष्ठ कवियों ने कविता देवी को अपनी चमत्कृत रचना से अलंकृत किया जिसे देख कर आत्मा हर्षित तथा प्रफुल्लित हो जाती है।

पांचवां अध्याय ।

परिवर्तन-कालिक हिन्दी (सं० १८८६ से १९२५ तक]

अङ्गरेजी राज्य का प्रभाव बेनीप्रवीन के समय से हिन्दो पर कुछ कुछ पड़ने लगा था और प्रेस भी इसी समय से भारत में स्थापित होने लगे थे, जिन से भाषा को बहुत लाभ पहुंचा और पहुंच रहा है। उक्त राज्य की सहगामिनी शांति भी उसी के साथ आने लगी। प्रेसों एवं शांति के प्रभाव उत्तरोत्तर उन्नति करते हुए इस परिवर्तनकाल में हिन्दी के पूर्ण सहायक हुए। सं० १९१४-१५ वाला लिपाही विद्रोह पठित समाज से कुछ भी वास्ता नहीं रखता था और न उसका लेश मात्र प्रभाव हिन्दी-साहित्य पर पड़ा।

परिवर्तन-काल को हम दो उपविभागों में विभक्त करेंगे, अर्थात् द्विजदेव-काल १८८६ से १९१५ तक, और दयानन्द-काल १९१६ से १९२५ तक।

(महाराजा मानसिंह) द्विजदेव-काल ।

इस काल (१८८६ से १९१५ तक) में स्वयं द्विजदेव के अतिरिक्त ललितकिशोरीजी, उमादास, जीवनलाल नागर, निहाल, देवकाष्ठजिह्वा, नवीन, कृष्णानंद व्यास, गणेशप्रसाद फरुखाबादी, माधव, कासिमसाह, गिरिधरदास, पजनेस, सेवक, महाराजा रघुराजसिंह, शम्भुनाथ मिश्र सरदार, बलदेवसिंह, पण्डित प्रवीन, अनीस, राजा शिवप्रसाद, गुलाबसिंह, बाबा रघुनाथदास रामसतेहो और लेबराज प्रधान कवि और लेखक थे।

बल पाया। हम ने लिखा है कि देव-काल (संवत् १८००) के पीछे हिन्दी-साहित्य में कुछ अवनति सी होने लगी। यह उत्तरालंक्रत हिन्दी के समय (संवत् १८८६) तक, वरन् अद्यावधि बढ़ती ही गई, क्योंकि, इस वृहत् समय में नवरत्नों में केवल एक महानुभाव की गणना हो सकी और प्रथम कक्षा के भी बहुत कवि नहीं हुए। पर इससे कोई यह न समझ बैठे कि तुलनाजन्य भाव से न देखने पर भी हिन्दी-काव्य में कोई वास्तविक हीनता आ गई। बात यह है कि जहाँ हमारे साहित्य भांडार में मतलब वाली कलाओं का प्रायः अभाव सा है, वहाँ निस्सन्देह कोरी कविता में (जिसे प्रसिद्ध अंगरेजी लेखक जान लॉक ने ठीक ही pleasant air put barren soil अर्थात् सुहावनी वायु परन्तु ऊसर मय पृथ्वी वाली वस्तु कही है) हिन्दी का सिर बहुत ऊँचा है। जैसे भारी और उत्तम महा-कवि इसमें हो गये हैं, वैसे दूसरी भाषाओं में कहीं द्वाष्टगोचर नहीं होते। अतः हिन्दी-साहित्य में जो दूसरी कक्षा के भी कवि (second-rate poets) हैं, उनकी समता वाले साहित्य-सेवा अन्य भाषाओं में बहुत नहीं मिल सकते। इस निगाह से देखने पर यद्यपि संवत् १८०२ (अर्थात् सन् १७३५ न कि पूरी १८ वीं ईसवी शताब्दी) से हिन्दी साहित्य तुलसी, सूर, देव और विहारी जैसे धुरंधर कवियों को नहीं उत्पन्न कर सका और इस विचार से कहा जा सकता है कि उस काल में दूसरी कक्षा के हो कवि (second-rate poets) हुए हैं, तथापि निरा-नुपंगिक भाव से यह कदापि नहीं कह सकते कि वास्तव में अन्य भाषाओं के सामने हिन्दी का पद साहित्य-विभाग में इस समय दब गया। हम यह सब ममता-भाव से नहीं कहते, वरन् भली भाँति विचारने के पश्चात् हमारी यही अनुमति दृढ़तापूर्वक स्थिर होती है।

भाषा में कहो। यह जायसी की रचना से न्यून है। गिरि-धरदास (१६००) भारतेन्दुजी के पिता थे। इन्होंने ४० ग्रन्थ छोटे बड़े बनाये, जिनमें एक नहुष नाटक भी है। इनका जरासंधबध प्रशंसनीय है। पजनेस (१६००) पन्ना-निवासी ने बहुत अच्छी और लोकप्रिय कविता को। इनको भाषा बड़ी सबल, तथा भाव बहुत ऊँचे होते हैं। थोड़े ही छन्दों में इन्होंने भाषारसिकों पर मोहिनी सी डाल रखी है। सेवक (१६००) बंदीजन एक प्रसिद्ध कवि थे। भाषाप्रेमियों ने इनकी कविता पसंद की है। रौवाँनरेश महाराजा रघुराज-सिंहजू ने अनेक उपकारी ग्रन्थ बनाये, जिनमें विविध कथा प्रासंगिक विषयों के सुहावने वर्णन हैं। शम्भुनाथ मिश्र (१६०१) ने शिवपुराण चतुर्थ खंड का भाषानुवाद किया। ये कथा-प्रासंगिक कवियों में बहुत अच्छे हैं। सरदार (१६०२) ने कई परमोत्तम टीकायें गद्य में लिखीं और कितने ही परम प्रशंसनीय पद्य-ग्रंथ भी रचे। इनकी रचना में एक अनूठा स्वाद है। महाराजा मानसिंह द्विजदेव (१६१६) इस समय के सत्कवियों में हैं। आपने बहुत से टकसाली छंद कहे हैं, जो बड़े बड़े कवियों की रचनाओं से मिलते हैं। कविता में आपका स्थान ऊँचा है। आप त्रयो-ध्यानरेश थे। राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद ने शिक्षा विभाग के लिए बहुत से ग्रंथ छड़ी बोली गद्य में रचे और हिन्दी का बहुत बड़ा पक्ष सरकार में लिया। आप उर्दू फ़ारसी मिश्रित खिचड़ी भाषा के पक्षपाती थे। कविराव गुलाबसिंह बूंदी के एक भारी कवि थे। इनका देहांत अभी हालही में हुआ। बाबा रघुनाथदास ने साधारण भाषा में विश्रामसागर नामक कथा-प्रसंग का ग्रंथ निर्माण किया। लेखराज गंधौली ज़िला सीतापूर के एक अच्छे

ललित किशोरीजी का रचना-काल संवत् १६१३ से आरम्भ होता है। इन्होंने प्राचीन प्रथा की कविता सौर-काल के समान भक्तिपूर्ण पदों में की, जो सर्वथा प्रशंसनीय है। इसका विषय भी प्राचीन कालकी भाँति कृष्ण-भक्ति सहित शृंगारात्मक है। ये महाशय लखनऊ वाले प्रसिद्ध साहजी के घराने के थे और इनका नाम साह कुन्दनलाल था। भक्तिभाव के कारण ये श्रीचुन्दावन में रहने लगे थे, जहाँ इन्होंने एक बड़ाही बढ़िया पच्चीकारी का मंदिर बनाया। इनके भाई ललितमाधुरीजी [साह कुन्दनलाल] कविता तथा मंदिर-निर्माण में इनके साथी थे।

उमादास और जीवनलाल नागर ने बहुत से ग्रन्थ रचे। देवकाष्ठजिह्वा (१८६७) की कविता भक्तिभाव से पूरा होती थी। नवीन (१८६८) की रचना अनुप्रासों एवं अन्य ढंगों में पद्याकर से मिलती है और उत्तमता में भी प्रायः उसी के समान है। कृष्णानन्द व्यास (१६००) ने रागसागरोद्भव राग कल्पद्रुम नामक पदों का भारी संग्रह बनाकर मुद्रित कराया। इसमें व्रजमंडल तथा अन्य स्थानों के २०५ भक्तों की कविता संग्रहीत है। गणेशप्रसाद फर्रुखाबादी ने १६०० से १६३० पर्यंत कविता की। इन्होंने खड़ी बोली में अनेकानेक विषय बहुत ही रोचक तथा उत्तमतापूर्वक वर्णित किये। इनकी भाषा बहुत ही अच्छी और कविता भावपूर्ण है। सर्व-साधारण ने इस कविरत्न की रचना को बहुत पसन्द किया और वह वास्तव में प्रशंसा के योग्य है। गान-मण्डलियों में इनकी कविता खूब प्रचलित है। माधव (१६००) ने पद्म-पुराण के आधार पर आदि-रामायण नामक एक बहुत बड़ा ग्रन्थ सुपाठ्य भाषा में रचा। कासिमशाह ने हंसजवाहिर नामक एक भारी प्रेम कहानी जायसी की भाँति उन्हीं की

बलदेव भी प्रशंसित और विख्यात कवि हैं। लखनेश ने कृष्ण-चरित्र अच्छा कहा। डा० रुडाल्फ हार्नली ने गौडीय भाषाओं का व्याकरण अँगरेज़ी में लिख कर भी हिन्दी का उपकार किया है।

विचार

इस परिवर्तन-काल में प्राचीन प्रथा के बहुत से कवि हुए, परन्तु नवीन प्रणाली की भी जड़ पड़ने लगी और गद्य विभाग का बल बढ़ने लगा। गद्य में अब ब्रजभाषा का चलन बिलकुल उठ गया और खड़ी बोली का प्रचार बढ़ा। लल्लू जो लाल ने शिक्षा विभाग के लिए ग्रन्थ लिखे थे, सो यद्यपि इन्होंने खड़ी बोली का प्रयोग किया तथापि सनातन प्रथा का प्रभाव इनकी भाषा में ब्रजभाषा के मेल से देख पड़ता है। यह प्रभाव परिवर्तन-कालिक गद्य से पूर्णतया उठ गया। कुछ दिन खिचड़ी भाषा के व्यवहार का प्रश्न हिन्दी में रहा, जिसका तात्पर्य यह है कि उन्नत श्रेणी की हिन्दी एकदम लोप होकर केवल उर्दू-मिश्रित साधारण बोलचाल की भाषा रह जाय। विद्वानों और अपढ़ों की बोली में सदा ही सभी देशों में अन्तर रहता है, सो हम लोगों को यह कैसे पसन्द हो सकता है कि हमारे पढ़े लिखे लोग भी तुलसी, देव और बिहारी की रचनाओं को समझें ही नहीं? भाषा सुगम अवश्य होनी चाहिये और बोल चाल में प्रचलित विदेशी एवं अन्य भाषाओं के शब्द उसमें ज़रूर रखने चाहिये, पर यह कदापि नहीं हो सकता कि हिन्दी साधु भाषा को एकदम तिलांजलि दे दी जाय। क्या यह सम्भव है कि विशुद्ध साधु अँगरेज़ी भाषा को छोड़कर अँगरेज़ लोग अपने देश में असाधु भाषा (Colloquialism) का ही प्रचार रखें और उसी में नामी

कवि थे। आपने कई ग्रंथ सानुप्रास भाषा में बड़े ही भावपूर्ण बनाये।

इस समय में लेखराज एवं ललितकिशोरीजी को छोड़कर प्रथम और द्वितीय श्रेणी का कोई भी कवि न था, परन्तु तृतीय श्रेणी के आठ नौ अच्छे कवि थे। पड़ाकर काल की अपेक्षा यह समय उत्तमता की दृष्टि से यद्यपि न्यून था, तो भी अच्छे कवि इस समय में भी बहुत थे। राजा शिवप्रसाद के साथ गद्य-विभाग ने कुछ उन्नति प्रारम्भ की। अनुप्रास का सिक्का अब भाषा काव्य पर पूर्ण रूप से जम गया था और कविगण भाव पर उतना ध्यान नहीं देते थे जितना कि भाषा पर।

दयानन्द काल

स्वामी दयानन्दन के समय (१९१६-१९२५) में राजा लक्ष्मणसिंह, शंकर दरियावादी, गदाधर भट्ट, फेरन, मुरारि-दान, औध, लछिराम, बलदेव तथा लखनेस अच्छे कवि थे। स्वामी जी ने आर्यसमाज स्थापित करके हिन्दू धर्म में संशोधन किया। इन्होंने गम्भीर गवेषणा-पूर्ण कई उत्तम धार्मिक ग्रन्थ खड़ी बोली गद्य में लिखे और अपने समाज का यह एक मुख्य नियम कर दिया कि प्रत्येक सदस्य हिन्दी की सहायता करे। स्वामीजी द्वारा हिन्दी का भारी उपकार हुआ है। राजा लक्ष्मणसिंह ने ब्रजभाषा पद्य और खड़ी बोली गद्य के अनुवाद ग्रन्थ रचे। इन्होंने खिचड़ी हिंदी को हटा कर विशुद्ध खड़ी बोली का मान बढ़ाया। शंकर ने प्राचीन प्रथा की अच्छी कविता की। गदाधर भट्ट पद्माकर के पौत्र और बढ़िया कवि थे। इनके भाव मनोहर एवं भाषा मधुर है। औधजी इस समय के उत्कृष्ट कवि हुए हैं तथा लछिराम एवं द्विज

प्रथा उठ ही गई, बरन् यह कि गद्य की प्रधानता इसी काल में हुई है।

भारतेन्दु-काल

भारतेन्दु-काल (संवत् १६२६--४५ वि०) में बालकृष्ण भट्ट, बालदत्त मिश्र पूर्ण, नवीनचन्द्राय, तोताराम, देवीप्रसाद मुंशी, जगमोहनसिंह, गदाधरसिंह बाबू, श्रीनिवासदास, रामपालसिंह, गोविन्दगिल्लोभाई, रसिकेश, महारानी वृषभानुकुंवरि, ललित, सहजराम, जीवन, शिवकवि, हनुमान, नन्दराम, गौरीदत्त, मोहनलालविष्णुलाल पंड्या, राधाचरण गोस्वामी, जगदीशलाल गोस्वामी, कार्तिकप्रसाद, केशवराम, गोविन्दकवि, अयोध्याप्रसाद खत्री, शिवसिंह-संगर, भीमसेन, वलदेवदास, गोविन्दनारायण मिश्र, फ्रेडरिक पिकाट, अम्बिकादत्त व्यास, बदरीनारायण चौधरी, भुवनेश, प्रियर्सन, नाथूराम 'शंकर', चंडीदान, दुर्गाप्रसाद मिश्र, नकछेदी तेवारी, रामकृष्ण, लालबिहारी मिश्र, सुधाकर द्विवेदी, महेश, प्रतापनारायणमिश्र, भानु, शिवनन्दनसहाय, उमादत्त, रामनाथ, सीताराम (लाला), दीनदयालु शर्मा, महावीरप्रसाद द्विवेदी, ज्वालाप्रसाद मिश्र, मदनमोहन मालवीय, श्रीधर पाठक, युगुलकिशोर मिश्र, विशाल, गौरीशंकर-हीराचन्द ओझा इत्यादि अनेक उत्कृष्ट गद्य और पद्य लेखक हुए और उनमें से बहुत से वर्तमान हैं। ऐसे महाशयों की गणना इस उपविभाग में इसी कारण से हुई है कि इनकी रचनाओं का समय संवत् १६४६ के पहले से आरम्भ हो जाता है। इसी नियमानुसार हमने इस इतिहास में सभी ठौर कवियों के स्थान नियत किये हैं। यद्यपि इस बीस वर्ष

ग्रन्थ सामयिक पत्रादि लिखे जावें ? इन्हीं कारणों से खिचड़ी हिन्दी न चल सकी, एवं हाल में ही संयुक्त प्रान्त के शिक्षा-विभाग का भी ऐसा ही प्रयत्न सफल न हो सका ।

अब तक हमारी भाषा में रोचक, किन्तु अनुपयोगी विषयों की विशेषता रही थी, परन्तु अब अँगरेज़ी राज्य के साथ संसारी लाभदायक बातों की ओर लोगों की प्रवृत्ति होने लगी । इसी की वास्तव में हम लोगों को अत्यन्त आवश्यकता भी थी, सो अँगरेज़ी राज्य ने इस भाँति हमारा महा उपकार किया है, जिसे हम लोगों को कभी न भूलना चाहिए । हिन्दी भाषा पर भी इस परिवर्तन काल का अच्छा प्रभाव पड़ा और उपयोगी विषयों पर रचनायें होने लगीं । इसी के साथ कहना ही पड़ता है कि संसारीपने की वृद्धि के साथ कविता और कवित्व-शक्ति का ह्रास होने लगा और गद्य काल आता हुआ देख पड़ा ।

छठा अध्याय ।

वर्तमान हिन्दी (१८२६ से) ।

अब प्रेस का प्रभाव और भी बढ़ा और उत्तमोत्तम हिन्दी ग्रन्थ प्रकाशित होकर भाषा का उपकार करने लगे । इधर जीवन-होड़वृद्धि, जाति प्रेम और शिल्पोन्नति के कारण विविध विषयों पर पुस्तकें लिखने की प्रथा ने भी खूब ही जोर बांधा और उपयोगी विषयों का ओर लोगों की प्रवृत्ति हुई । इस काल को हम दो उप विभागों में बाँटेंगे, अर्थात् भारतेन्दु काल (१८२६—५५) और गद्यकाल (१८४५ से अब तक) । इससे यह न समझना चाहिए कि अब पद्य लिखने की

प्रशंसनीय हैं। इन्हीं के प्रभाव से वर्तमान हिन्दी की इतनी उन्नति हुई है। इन्होंने प्राचीन और नवीन दोनों ही प्रथाओं की कविता उत्तमता के साथ की और कुल मिलाकर १७५ छोटे-बड़े ग्रन्थ बनाये।

अन्य लेखक

बालकृष्ण भट्ट ने २४-२५ वर्ष तक प्रसिद्ध सामयिक पत्र हिन्दो-प्रदीप का सम्पादन किया। हिन्दी के ये इस समय बड़े ही प्राचीन और मान्य लेखक हो गये हैं। नवीन बाबू ने सामाजिक सुधार पर जोर दिया। तोताराम ने एक नाटक रचा और बाल्मीकीय रामायण के कई कांडों का साधारण पद्य-मय अनुवाद किया। मुन्शी देवीप्रसाद द्वारा इतिहास-सम्बन्धी सामग्री हिन्दी में एकत्रित हुई और जगमोहनसिंह ने अनेक लोकोपकारी ग्रन्थ निर्माण किये। श्रीनिवासदास नाटककार थे। राजा रामपालसिंह ने मरते दम तक हानि सहकर “हिन्दुस्तान”, दैनिक पत्र चलाया। गोविन्दगिल्लाभाई प्राचीन प्रथा के अच्छे कवि हैं। रसिकेश्वरी रियासत पन्ना के दीवान थे और पाँछे से बैरागी होकर अयोध्याजी में अग्रज हो गये। इन्होंने २६ प्रशस्त ग्रन्थ निर्माण किये। महारानी वृषभानु कुँवरि (ओड़छा) ने पदां में प्राचीन प्रथा की भक्तिमयी कविता की। ललित ने चटर्काले छन्द-ग्रन्थ रचे और सहजराम ने तुलसीदासजी के ढंग पर प्रह्लादचरित्र और रामायण बनाई, जिसके तीन कांड हमारे पास हैं। हनुमान कवि मणिदेव के पुत्र थे। ये कविता अच्छी बनाते थे। गौरीदत्तजी का हिन्दी-प्रेम एवं उत्साह प्रशंसनीय था। इन्होंने एक छोटा कोष भी बनाया। पंड्याजीने रासो आदि

के बीच से ही गद्य का जोर बढ़ने लगा था, तो भी पद्य लेखकों की कमी न थी और कवि भी कई अच्छे-अच्छे हुए।

हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने संवत् १६४१ पर्यन्त प्रायः १८ वर्ष तक हिन्दी में जैसा चमत्कार दिखलाया, वैसा हम लोगों को प्रायः सौ वर्षों से देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। देवजी की मृत्यु के प्रायः ८० वर्ष पीछे विद्यापीठ काशी-पुरी में इनका जन्म संवत् १६०७ में हुआ था। इनका कविता काल संवत् १६२३ से प्रारम्भ हो जाता है। इस सौ वर्ष के बीच भाषा में अनेक परमोत्कृष्ट कवि हुए, पर नवरत्नों में परिगणित हो सकने का सौभाग्य किसी को भी प्राप्त न हो सका। हमारे भारतेन्दुजी ने केवल ३४ वर्ष की अवस्था पाकर भी ऐसा अलौकिक चमत्कार दिखलाया कि इनके गुणों से सभी लोग मुग्ध हो गये और सभी ने मिलकर इन्हें भारतेन्दु की उपाधि से विभूषित किया। पद्य में भी इन्होंने बहुत ही विशद कविता की, पर गद्य एवं नाटक के ये सब से बड़े पोषक और उन्नायक हो गये हैं। वर्तमान गद्य का इन्हें जन्मदाता कहना चाहिए। इनकी गद्य एवं पद्यवाली सभी रचनाओं में माधुर्य कूट-कूटकर भरा है और इनमें प्रेम एवं जातीयता की मात्रा वास्तव में अगाध थी। यों तो पहले भी विद्यापति ठाकुर के ही समय से नाटक लिखने की रीति पड़ चुकी थी और कई मैथिल एवं अन्य लेखकों ने उसका अनुसरण भी समय-समय पर किया था, पर हिन्दी-नाटक के वास्तविक प्रथम लेखक इन्हीं को मानना चाहिए, क्योंकि इन्होंने प्रायः १६ नाटक ग्रन्थ लिखे, जो अत्यन्त सुन्दर और

लिखा पढ़ी करते हैं। व्यासजी ने कई एक गद्य और पद्यमय ग्रन्थ विद्वत्ता-पूर्ण लिखे और बदरीनारायण चौधरी ने कई ग्रन्थ बनाये एवं सामयिक पत्र सम्पादित किये। यह भी पुराने नामी लेखकों में से हैं। प्रियर्सन महोदय हिन्दी के परम प्रसिद्ध आचार्य प्रेमी हैं। आपने अंगरेज़ी में हिन्दी साहित्य के इतिहास-कथन में एक अच्छा ग्रन्थ बनाया है और भारतीय लिङ्ग्विस्टिक सर्वे में अपने पांडित्य और हिन्दी-प्रेम का परिचय दिया है। आपका श्रम सराहनीय है। नाथूराम 'शंकर' ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली के सुकवि हैं। दुर्गा-प्रसाद मिश्र एक अच्छे लेखक और पत्र-सम्पादक थे। नक़्खेदी तेवारी ने भी बहुत करके सरोज के आधार पर कवियों की एक सूची रची। लालबिहारी मिश्र ने कई अच्छे पद्यात्मक सानुप्रास ग्रन्थ रचे। सुधाकर जी ने संस्कृत के विद्वान् होकर भी हिन्दी पर श्रम किया। प्रतापनारायण मिश्र एक बड़े चटकोले गद्य और पद्य-लेखक थे। आपका ब्राह्मण-पत्र बड़ा मनोरंजक था। जगन्नाथप्रसाद 'भानु' एक सुलेखक और विद्वान् हैं। शिवनन्दनसहाय ने कई उपकारी गद्य और पद्य-ग्रन्थ तथा नाटक लिखे हैं। सीताराम ने अनेक अनुवाद तथा अन्य ग्रन्थ रचे हैं। दीनदयालु शर्मा महामंडल के सर्वोत्कृष्ट व्याख्यान-दाता हैं। आपको जिह्वा में बड़ा बल है। महावीरप्रसाद द्विवेदी एक भारी लेखक हैं। आपने कई उपयोगी ग्रन्थों के गद्य में अनुवाद रचे हैं और हिन्दी-हित में आप सदैव बद्ध-परिकर रहे हैं। कई साल 'सरस्वती' पत्रिका का आपने सफलतापूर्वक सम्पादक किया। ज्वालाप्रसाद मिश्र ने कई गवेषणा-पूर्ण ग्रन्थ रचे। आप महामंडल के अच्छे व्याख्यान-दाता और बड़े विद्वान् थे। मदनमोहन मालवीय ने "हिन्दुस्तान" का सम्पादन कुछ वर्ष किया। आप भारत के एक अतमोल

प्राचीन विषयों पर अच्छा श्रम किया। अयोध्याप्रसाद खत्री का खड़ीबोली पद्य की ओर सराहनीय श्रम था।

शिव सिंह सेंगर

शिवसिंह सेंगर ने हिन्दी-कविता का पहला इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थ लिखकर जो उपकार किया उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। इनके पहले हिन्दी-इतिहास का कहीं पता तक न था, पर इस महापुरुष ने बड़े श्रम और खोज से प्रायः एक हजार कवियों का विधिवत् पता लगा कर उनके जीवनचरित्र, कविता-काल और उदाहरण दिये हैं। अवश्यही इनके दिये हुए सन्-संवत्तों में कुछ गड़-बड़ हो गई है और उनमें कई स्थानों पर अशुद्धता आ गई है, एवं और भी भ्रम के उदाहरण यत्र-तत्र पाये जाते हैं, पर किसी और प्रथम श्रम करने में ऐसा होना स्वाभाविक ही है। कुल मिलाकर शिवसिंहजी का ग्रन्थ अत्यन्त सराहनीय हुआ है। डाक्टर ग्रियर्सन अपने Modern Vernacular Literature of Hindustan में प्रायः इन्हीं के सहारे चले हैं। अपनी ओर से डाक्टर साहब ने अधिक नहीं लिखा है। तात्पर्य यह कि शिवसिंहसरोज हिन्दी में एक अभूतपूर्व ग्रन्थ-रत्न है। डाक्टर साहब ने कुछ कविता भी की है।

अन्य लेखक

फ्रेडरिक पिकाट एक ऐसे अँगरेज़ हो गये हैं, जिन्होंने हिन्दी-प्रेम के साथ हिन्दी-भाषा में ग्रन्थ तक लिखे हैं। अन्य अँगरेज़ हिन्दी-प्रेमी गण प्रायः अँगरेज़ी में ही उसके विषय में

गद्य-काल

गद्य-काल (संवत् १८४६ से अब तक) में प्रधान लेखक या कवि 'दीन', शरच्चन्द्र सोम, देवीप्रसाद पूर्ण, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, राधाकृष्णदास, बलदेवप्रसाद मिश्र, देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमर, बालमुकुन्द गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, किशोरीलाल गोस्वामी, साधुशरणप्रसाद, गदाधरसिंह ठाकुर, मुरारिदान, चन्द्रकलाबाई, सुजान, मथुराप्रसाद मिश्र, द्विज गंग, ब्रजनन्दनसहाय, बचनेश, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, गंगानाथ झा, रामजीलाल शर्मा, हरिपाल क्षत्री, भगवानदीन, अक्षयवट मिश्र, गदाधर, श्यामसुन्दरदास, लोचनप्रसाद पांडेय, मन्नन द्विवेदी, जानकीप्रसाद द्विवेदी, माधवराव सप्रे, रघुनाथप्रसाद, देवीप्रसाद शुक्ल, रूपनारायण पांडेय, भुवनेश्वर मिश्र, मैथिलीशरण गुप्त, माणिक्यचन्द्र जैन, जैन वैद्य, महेशचरणसिंह, स्वामी सत्यदेव आदि हैं।

शरच्चन्द्र सोम ने महाभारत का गद्यानुवाद लिखकर बड़ा उपकार किया है और पूर्णजी वर्तमान समय के वास्तव में सत्कवि हो गए हैं। राधाकृष्णदास गद्य और पद्य के अच्छे लेखक एवं हिन्दी के उन्नायक थे। बलदेवप्रसाद मिश्र ने अनेकानेक उपयोगी ग्रन्थों का अनुवाद हिन्दी में किया और देवकीनन्दन खत्री ने हमारे उपन्यास-विभाग को खूब ही उन्नति दी। इनके लेखों में यदि असम्भव कथन न होते, तो बहुत अच्छा था। गोपालराम गहमर भी अच्छे उपन्यासकार हैं। बालमुकुन्द गुप्त ने जोरदार एवं हास्यरस-पूर्ण लेखों द्वारा हिन्दी को सुशोभित किया। अयोध्यासिंह उपाध्याय बड़े सत्कवि हैं और उन्होंने कई प्रकार की भाषा लिखने में

७० हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास [सं० १८४५ वि०

रत्न हैं और बड़े-बड़े कार्य्यों में लगे रहने पर भी हिन्दी-हित पर सदैव ध्यान रखते हैं। युगलकिशोर मिश्र हिन्दी-साहित्य विषय के अपने समय में प्रायः सर्वोत्कृष्ट ज्ञाता और सुकवि थे। गोपालराम चामत्कारिक उपन्यासकार हैं, और गौरीशंकर हीराचन्द ओझा प्रसिद्ध पुरातत्त्व-वेत्ता और इतिहासज्ञ हैं। श्रीधर पाठक ने खड़ीबोली पर विशेष ध्यान दिया। आप ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में प्रशंसनीय पद्य-रचना करते हैं। आपने पद्यात्मक अनुवाद सराहनीय किये और गद्य भी अच्छा लिखा है। विशाल ने हास्यरस के मनोहर छन्द रचे। रामराव चिंचोलकर और माधवराव सप्रे ने कुछ दिन 'छत्तीसगढ़-मित्र' का सम्पादन किया। सप्रे जी हिन्दी के प्रसिद्ध लेखकों में से हैं।

विचार

इस भारतेन्दुवाले समय में गद्य और पद्य लेखक गणना और उत्तमता में प्रायः समान थे, परन्तु भारतेन्दुजी को छोड़कर कोई भारी कवि नहीं हुआ। इस समय गद्य का बल दिनों दिन बढ़ता गया और अन्त में उसका पूरा गौरव हो गया। पद्य-कविता की कला भारतेन्दु के अतिरिक्त धीरे-धीरे मन्द पड़ती गई और गद्य शनैः शनैः खूब परिपक्व हो गया तथा सैकड़ों उपयोगी विषयों पर उत्तम उत्तम गद्य-ग्रन्थ बने। समाचार एवं सामयिक पत्र-पत्रिकाओं की इस समय बहुत संतोषदायिनी उन्नति हुई और सभी प्रकार से उपकारी विषय हिन्दी में लाने का लेखकों ने प्रयत्न किया। अन्य भाषाओं से अनुवाद इस समय हिन्दी में बहुतायत से हुए, जिससे विविध विषयों का हिन्दी-भांडार इस छोटे से काल में बहुत मँफ़

वर्तमान हिन्दी] भाषा का विकास और नूतन परिपाटी ७३

लाभ की आशा है । इसकी ओर से हिन्दी की उत्तमा, मध्यमा और प्रथमा परीक्षाएं प्रति वर्ष होती हैं, जिनमें सैकड़ों परीक्षार्थी बैठते हैं । प्रथम दो में उत्तीर्ण होनेवालों का क्रम से रत्न और विशारद की उपाधि भी मिलती है । छापेखानों ने भी अब उन्नति कर ली है और छपाई का काम दिनोंदिन अच्छा होता जाता है । हिन्दी में आजकल अनेकानेक सुलेखक हैं । इन दिनों सभी विषयों के ग्रन्थों से हिन्दी का भांडार खूब भरा है और भरना जाता है । नाटक भी अच्छे-अच्छे बने हैं और बनते जाते हैं । पत्र-पत्रिकाओं की भी अच्छी बहार है । सारांश यह कि इस काल हिन्दी की बहुत ही अच्छी उन्नति हुई है और हो रही है ।

नूतन परिपाटी

इस समय के लेखकों ने प्राचीन प्रथा को छोड़कर अब विविध विषयों पर गद्य-ग्रन्थ लिखने की ओर विशेषतया ध्यान दिया है । इनकी इच्छा हिन्दी में सभी उपयोगी विद्याओं के लाने की है । आजकल लोग ऐसे ही ग्रन्थों से हिन्दी का भांडार परम प्रचुरता से भर रहे हैं, जो देखकर प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी का मन आनन्द-सागर की तरंगों में निमग्न होता है । पर वर्तमान लेखकों में एक यह स्वाभाविक दोष भी आ गया है कि उन में अधिकांश लोग अनुवाद ही विशेषतया करते हैं, अथवा अन्य भाषाओं वाले ग्रन्थों का सहारा लेकर हिन्दी में पुस्तकें लिखते हैं । आत्म-निर्भरता और विचार स्वतन्त्रता लेखकों के लिए अत्यावश्यक गुण हैं । आजकल की लेखन-शैली देखते हुए इन अनुपम गुणों के वर्द्धमान होने में कुछ शंका उठ सकती है । वर्तमान समय के सुद्रित ग्रन्थों

७२ हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास [स० १८७२ वि०

अच्छी सफलता पाई है। ठाकुर मदनमोहनसिंह का स्वतंत्रतायुक्त अनूठापन, मुरारिदान की आचार्यता और मथुराप्रसाद के कथा-प्रासङ्गिक वर्णन भी दर्शनीय हैं। प्रजनन्दनप्रसाद ने विविध विषयों के अनेकानेक प्रशस्त ग्रंथ लिखकर गद्य काव्य का भांडार खूब भरा है, एवं नाटक की ओर भी ध्यान दिया है। गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री ने अन्य भाषाओं के कई उत्तम ग्रन्थों के अनुवाद विशुद्ध हिन्दी में किये हैं तथा गद्य एवं पद्य के स्वतंत्र ग्रन्थ भी रचे हैं। श्यामसुन्दरदास एक बड़े ही श्रमशील हिन्दी के उपकारी और लेखक हैं। इनके परिश्रम से भाषा का अच्छा उपकार हुआ है और यह उसका एक बृहत् कोष सम्पादित कर रहे हैं। मन्नन द्विवेदी एक बड़े ही हानहार सुलेखक थे। मैथिलीशरण गुप्त खड़ीबोली के एक प्रसिद्ध एवं हानहार कवि हैं। लोचनप्रसाद देशोपकारी लेख अच्छे लिखते हैं। जैन वैद्य, लोचनप्रसाद पांडेय और माणिक्यचन्द्र जैन का हिन्दी-उत्साह अत्यन्त सराहनीय है। प्यारे लाल मिश्र, काशीप्रसाद त्रिसवाल, सत्यदेव, लक्ष्मीचन्द्र और महेशचरणसिंह द्वारा बाहरी बातों का ज्ञान हिन्दी-रसिकों को हुआ है। इस समय में समाचार-पत्रों की भी अच्छी उन्नति हुई और सरस्वती, मय्यादा, स्त्री प्रभा-दर्पण, भारतमित्र बङ्गवासी, चित्रमयजगत्, वेंकटेश्वर-समाचार, अभ्युदय, सद्धर्मप्रचारक, माधुरी, मनोरमा इत्यादि अनेक पत्रिकाएँ और पत्र हिन्दी की शोभा बढ़ा रहे हैं। माधुरी और सरस्वती हिन्दी के गौरव हैं। कई एक समाएँ भी स्थापित हो चुकी हैं, जिनमें काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा तथा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रधान हैं। आरा की सभा भी अच्छा काम कर रही है। साहित्य-सम्मेलन की एक वार्षिक बैठक होती है, जिससे हिन्दी को बहुत लाभ हुआ है और आगे को भी

वर्तमान हिन्दी]

खड़ी बोली

५५

प्रधानुयायी लोगों के विचार विस्तीर्ण नहीं होते। आशा है कि लोकोन्नति के साथ इस क्षति की भी पूर्ति हो जावेगी। इन दिनों हमारे हिन्दी समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने प्राचीन अन्ध-परिपाटी-पूर्ण विचारों को छोड़कर उन्नत विचारों की ओर थोड़े ही वर्षों से अच्छा ध्यान दिया है। आशा है कि यह उन्नति समय के साथ और भी बढ़ेगी।

खड़ीबोली

खड़ीबोली का अच्छा प्रचार हिन्दी-पद्य में भी हो रहा है। अब तक इसका कोई बहुत श्रेष्ठ कवि अवश्य नहीं हुआ है, पर कुछ महाशय इसमें सराहनीय रचनाएँ कर गये और अब भी करते हैं। इस बोली में कविता करनेवाले श्रुति-कटु दूषण को प्रायः बिल्कुल नहीं बचाते और बहुधा दीर्घान्त छन्दों में केवल ह्रस्व अक्षर लिखकर दीर्घ का काम निकालना चाहते हैं, जिससे छन्दोभंग दूषण आ जाता है। खड़ी बोली के कविगण बहुधा यति-भंग-दूषण से भी नहीं बचते। आजकल कवियों ने पुरानी प्रथा को छोड़कर पुराने आचार्यों की आज्ञाओं से भी मुख मोड़ सा लिया है। यह बात सर्वथा अनुचित है। कविगण को प्राचीन प्रथा छोड़ने पर भी उच्छृङ्खलता का दोषी न होना चाहिए। इन दो एक दोषों के होते हुए भी नवीन प्रथा की कविता को हम पसंद करते एवं आवश्यक समझते हैं। हिन्दी में समय-समय पर और आजकल भी अनेक प्रकार की उन्नतियाँ हुई हैं, जिनका दिग्दर्शन किया गया है और आगे होगा। मिश्रबन्धु-विनोद में कुछ विस्तार से उनका वर्णन पाया जायगा। इन दिनों खड़ीबोली के कविगण भी कुछ श्रुति मधुर भाषा का आदर करने से लगे हैं।

७४ हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास [सं० १६७५ वि०]

में से कितने ही अँगरेजी, बँगला, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं के आधार पर लिखे गये हैं। नवीन परिपाटी के लिये यह समय, हिन्दी के एक प्राचीन भाषा होने पर भी, अरुणोदय काल कहा जा सकता है। ऐसे समय में ऐसे ही परावलम्बी ग्रन्थों का बनना कुछ स्वाभाविक है, पर यह देखकर शोक अवश्य होता है कि बड़े-बड़े लेखक भी अपने मस्तिष्क से काम लेने से मानों डरते हैं और अच्छे-अच्छे प्रसिद्ध ग्रन्थों तक में दूसरों की रचनाओं से प्रच्छन्न अथवा प्रकाश चोरी या सीनेजोरी निकल पड़ती है। आशा है कि हमारे लेखकगण अनुयायीपन की बानि के फेर में पड़कर नूतनविचारोत्पादन एवं मस्तिष्क प्रबलता को न भूल जावेंगे। कोई भी भाषा केवल नक़ल करनेवालों एवं पीछे चलनेवालों के ग्रन्थों से बड़ी नहीं हो सकती। हर्ष का विषय है कि इस ओर थोड़े ही वर्षों से उत्कृष्ट लेखकों, स्वतन्त्र ग्रन्थों तथा शिष्ट विचारों की भी महत्ता हम नवीन ग्रन्थों में देख पड़ने लगी है।

नवीन विचारों के समावेश से पाश्चात्य सभ्यता का भी प्रभाव हमारी भाषा पर पड़ रहा है, जिससे परलोक के विचारों को छोड़कर सांसारिक उन्नति विषयक ग्रन्थ इसमें इस समय बहुतायत से बन रहे हैं। पाठशालाओं के कारण भी हिन्दी में विविध विषयों के ग्रन्थ बनते हैं। आजकल सभ्य संसार में समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं का बल बहुत बढ़ा है। इसका कुछ प्रभाव हिन्दी पर भी पड़ा है। हमारे यहाँ भी अब पत्र-पत्रिकाओं का बाहुल्य है, पर एक यह बड़ा दोष है कि बहुतेरे पत्र उन्नत नव्य विचारों को छोड़कर पुरानी लकीर पीटते जाते हैं। इसका फल यह होता है कि राजविद्या से अनभिज्ञ केवल हिन्दी जाननेवाले पुरानी

हिन्दी का विकास] प्रौढ़ माध्यमिक गद्य के उदाहरण ७७

सम्पूर्ण पृथ्वी ब्राह्मणनि कौ दै चुकौ, अरुसहस्र जज्ञ करि चुकौ, अरु देवता सर्व पुजि चुकौ, अरु पितरनि को संतुष्ट करि चुकौ, स्वर्ग लोक प्राप्त करि चुकौ, जा मनुष्य के मन छन मात्र ब्रह्म के विचार बैठे ।

प्रौढ़ माध्यमिक हिन्दी

(संवत् १६००—१६४८ वि०) गोस्वामी विट्ठल नाथजी ।

जमे के सिषर पर शब्दायमान करत है त्रिविध वायु बहत है हे निसर्ग स्नेहाद्र सभी कूं संवोधन, प्रिया जू नेत्र कमल कूं कछुक मुद्रित द्रष्टि होय कै बारंबार कछु सखी कहत भई यह मेरो मन सहचरी एक क्षण ठाकुर को त्यजत नाहीं ।

गंगा भाट (संवत् १६२६ वि०)

इतनो सुन के पातशाहा जी श्री अकबर शाहा जी आदि सेर सोना नरहरदास चारन को दिया इनके डेढ़ सेर सोना हो गया ।

गोस्वामी गोकुलनाथजी (सं० १६४८ वि०)

तब दामोदरदास हरसानी ने बिनती कीनी जो महाराज आप यां कों अंगीकार कब करोगे तब श्री आचार्य जी महा-प्रभून ने दामोदार दास सेां कहयो जो यासों अब वैष्णव को अपराध पड़ैगो तौ हम याकों लक्ष जन्म पाछें अंगीकार करैंगे ।

महात्मा नाभादासजी (संवत् १६६० वि० के आसपास)

तब श्री महाराज कुमार प्रथम वशिष्ठ महाराज के चरन छुई प्रनाम करत भये । फिर अपर वृद्ध समाज तिनको प्रनाम करत भये । फिर श्री राजाधिराज जू को जोहार करि कै श्री महेन्द्रनाथ दशरथ जू के निकट बैठत भये ।

सातवाँ अध्याय

हिन्दा का विकास

हिन्दी ने प्रारम्भ से अब तक क्या-क्या और कैसे-कैसे उन्नति की इसका व्यारेवार हाल इतिहास के साद्यंत देखने से प्रकट होगा, पर एक ही ठौर इसका कुछ ज्ञान प्राप्त हो जाने के विचार से हम इस स्थान पर सभी समयों के कुछ उदाहरण एकत्रित किये देते हैं। इन्हें ध्यान से मनन करने पर स्पष्टरूप से विदित हो जायगा कि हिन्दी लेखन-प्रणाली में समयानुसार क्या-क्या परिवर्तन होते गये और वह कैसे-कैसे रूप धारण करती गई।

गद्य विभाग

पूर्व प्रारम्भिक हिन्दी

(संवत् १२२६ वि० का नमूना—मेवाड़ की एक सनद)

स्वस्ति श्री श्री चीत्रकोट महाराजाधीराज तपे राज श्री श्री रावल जी श्री समर सी जी बचनातु दा अमा आचारज ठाकर रुसी केष कम्य थाने दलीसु डायजे लाया अणी राज में ओषद थारी लेवेगा ओषद ऊपरे माल की थाकी है ओ जनाना में थारा बंसरा टाल ओ दुजो जावेगा नहीं और थारी बैठक दली में ही जी प्रमाणे परधान बरोबर कारण होवेगा । (इसका सरल प्रचलित हिन्दी में अनुवाद मिश्र-बन्धु-विनोद के ८ वें अध्याय में दिया है ।)

उत्तर प्रारम्भिक हिन्दी

(संवत् १४७७ वि० के लगभग) महात्मा गोरखनाथ जी सो वह पुरुष सम्पूर्ण तीर्थ अस्नान करि चुकी, अरु

हृदयानन्द कंसादि निकन्दन, वंसावतंस अंसावतार जय जय ।

सूरतिमिश्र (सं० १७६७)

सीस फूल सुहाग अरु बैदा भाग ए दोऊ आये पाँवड़े, सोहे सोने के कुसुम, तिन पर पैर धरि आये हैं (कविप्रिया की टीका) ।

दासजी (संवत् १७८६ वि० के निकट)

धन पाये ते मूर्खहू बुद्धिवंत हू जातु है । और युवावस्था पाये ते नारी चतुर हू जाति है यह व्यंग्य है । उपदेश शब्द लक्षणा सो मालूम होता है औ वाच्यहू में प्रगट है । (दास-कृत टीका)

ललित किशोरी व ललित माधुरी सं० १८०० वि०)

मलयगिरि को समस्त वन वाकी पवन सों चन्दन हू जाय । वाके कछू इच्छा नहीं ।

उत्तरालंकृत हिन्दी ।

(संवत् २८६० वि०) ललूलाल

इस बीच अति व्याकुल हो ' सुधि बुधि देह को बिसारे मन मारे रोती यशोदा रानी उद्धव जी के निकट आय राम कृष्ण की कुशल पूछ बोली कहो उद्धव जी हरि हम बिन वहाँ कैसे इतने दिन रहे और क्या सन्देशा भेजा है कब आय दर्शनदेंगे ?

(वही काल) सदल मिश्र ।

कुंड में क्या अच्छा निर्मल पानी कि जिसमें कमल के फूलों पर भौंरे गूँज रहे थे; तिस पर हंस सारस चक्रवाक आदि पक्ष भी तीर तीर सोहावन शब्द बोलते, आस पास के गाछों पर कुहू कुहू कोकिलें कुहुक रहे थे, जैसा वसन्त ऋतु का घर ही होय ।

वर्तमान हिन्दी

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (सं० १६२६ वि०)

महाराज फिर सन्तोष ने बड़ा काम किया, राजा प्रजा सब को अपना चेला बना लिया। अब हिन्दुओं को खाने मात्र से काम देश से कुछ काम नहीं। रोजगार न रहा तो सूद ही सही वह भी नहीं तो घर ही का सही। 'संतोषं परमं सुखं'। रोटी ही को सराह सराह के खाते हैं उद्यम की ओर देखते ही नहीं। निरुद्यमता ने भी सन्तोष को बड़ी सहायता दी। व्यापार को इन्हीं ने मार गिराया। फिर महाराज अपव्यग्र ने खूब लूट मचाई। अदालत ने भी अच्छे हाथ साफ किये। फैशन ने तो थिल और टोटल के इतने गोले मारे कि बंटाधार कर दिया और सिफारिश ने भी खूब ही छकाया। पूरब से पच्छिम और पच्छिम से पूरब पीछा करके खूब भगाया। मोटा भाई बना बनाकर झुंड लिया।

बालकृष्ण भट्ट

परदे का दूसरा नाम यवनिका भी है। यह यवनिका माया के रूप में ऐसा प्रबल आच्छादन है कि जिससे शुद्ध सनातन सच्चिदानन्द परमात्मा हम से सदा तिरोहित रहता है। अज्ञान तिमिर के पटल में पड़े समस्त जीव कोटि उसके प्रकाश से वैसे ही वंचित हो रहे हैं जैसे कोहरे से सूर्य ढंके रहते हैं। इस परदा के हटाने का एक मात्र उपाय केवल ज्ञानांजन शलाका है जिस ज्ञानांजन शलाका से नेत्र के उन्मीलित होते ही परदा दूर हट जाता है। परदा हटा कि फिर कोई अड़चन बाकी न रहा, सच है "परदा उठा के देखा तो

परिवर्तन काल की हिन्दी (संवत् १६०० से १६०५ वि०)
सरदार (सं० १६०२ वि०)

बंशी बट के निकट आज मैं ने नेक श्याम को मुख हेरो ।
नट नागर के पट पै तब ते मेरो मन लटको है । शिव रिपु
त्रिय तुलसी घटहीन मनुज नर गिरा रस इनको आदि वर्णन
लेत तुहिन गिरजा पार्वती सुत स्वामि कार्तिक बाहन मोर के
पक्ष शिर पर धरे हैं ।

राजा शिवप्रसाद (सं० १६११ वि०)

जब विपत के दिन आते हैं तो सारे सामान ऐसे ही बंध
जाते हैं । निदान राजा नल ने चलते समय दमयन्ती की
साड़ी काटकर आधी उसमें से अपने पहरने को ली और
आधी उसके बदन पर रहने दी । इस मनुष्य का मन भी
विधाता ने किस प्रकार पर रचा है !

राजा लक्ष्मणसिंह (सं० १६१७ वि०)

रास छोड़ते ही घोड़े सिमट कर कैसे झपटे कि खुरों की
धूल भी साथ न लगी । केश खड़े करके और कनौती उठा
कर घोड़े दौड़े क्या हैं उड़ आए हैं । जो वस्तु पहले दूर होने
के कारण छोटी दिखाई देती थीं सो अब बड़ी जान पड़ती
हैं ।

श्रीस्वामी दयानन्दजी (संवत् १६२० वि०)

जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको
मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है ।
वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और
असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय किन्तु जो
पदार्थ जैसा है वैसा ही कहना लिखना और मानना सत्य
कहाता है ।

हिन्दी का विकास] वर्तमान गद्य का विकास

८३

था कि उन्होंने पूर्वीय प्रान्तनिवासी होने पर भी गद्य में उसका सम्मान किया, यद्यपि पद्य में ऐसा नहीं किया, जैसा कि आगे ज्ञात होगा। इस समय से संवत् १६८० तक गंगा भाट को छोड़ गद्यमें सब ज्ञात लेखकों ने प्रायः इसी भाषा का प्रयोग किया, परन्तु इस संवत् में जटमल ने ब्रजभाषा में खड़ी बोली बहुत मिला दी, यहाँ तक कि उसके लेख में खड़ी बोली का ही प्राधान्य है। तुलसीदासजी का लेख साधारण बोलचाल मात्र का उदाहरण है, न कि काव्य का। देव ने शुद्ध ब्रजभाषा लिखी, परन्तु दास ने उसमें खड़ीबोली के कुछ शब्द मिलाये। लल्लूलाल ने उन्हें बढ़ाया और सदल मिश्र ने इस वृद्धि की और भी उन्नति की, परन्तु सरदार ने फिर भी शुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग किया। राजा शिवप्रसाद ने पहले पहल ब्रजभाषा को प्रायः बिल्कुल छोड़ दिया और राजा लक्ष्मणसिंह, स्वामी दयानन्द आदि ने इसी रीति को सत्कारा। भारतेन्दुजी से गद्य की अच्छी उन्नति हुई। उन्होंने उसमें संस्कृत शब्दों का कुछ प्रयोग बढ़ाकर उसकी छटा वर्द्धमान की, परन्तु उनके पीछे लेखकों ने संस्कृत की मात्रा को बहुत अधिक बढ़ाया, जिससे भाषा दिनों दिन गूढ़तर होती जाती है। संस्कृत-शब्द-व्यवहार-बाहुल्य के साथ उस भाषा के नियम भी हिन्दी में घुसने लगे हैं। इस विषय का कुछ सविस्तार वर्णन 'विनोद' में किया गया है। भाषा के गूढ़ीकरण से उसमें पांडित्य-वृद्धि अवश्य होती है परन्तु उसकी लोकप्रियता को धक्का लगता है। इन कुछ बातों के होते हुए भी ऐसा सहर्ष कहने का आज अवसर मिला है कि हिन्दी-गद्य ने अच्छी उन्नति कर ली है और इसकी उत्तरोत्तर वृद्धि की आशा है। वर्तमान गद्य-लेखन-शैली का जन्म राजा शिवप्रसाद के समय से मानना चाहिए।

८२ हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास [सं० १६६५ वि०

मीना बज़ार है" । इस मीना बाज़ार के सैलानी ही का दूसरा नाम जीवनमुक्त है ।

पुरोहित गोपीनाथ (आधुनिक लेखक)

रे विद्रोही प्रजागण ! अरे शान्ति के शत्रुओ ! अरे अपने निकट वास्तियों के रुधिर से अपनी तलवारों को कलंकित करनेवालो ! क्या तुम नहीं सुनते ? अरे नराधमो ! अरे पशुओ ! अपनी विषमय क्रोधाग्नि को अपने ही शिर से निकलते हुए रक्त प्रवाह से शमन करनेवाले दुष्टो ! अपने रुधिरा-प्लुत हाथों से अपने कुपित शस्त्रों को शीघ्र फेंक दो और अपने कोपाविष्ट राजा की दंडाज्ञा को श्रवण करो ।

श्यामसुन्दरदास (आधुनिक लेखक)

ग्रन्थकर्त्ता बंदीजन वंशज खुमान अथवा मान कवि हैं जो विक्रम के आश्रित थे । ये कवि बसहरी ग्राम के रहनेवाले थे । इनके पूर्वज महाराज छत्रसाल के आश्रित थे और ये लोग क्रमशः उसी वंश के आश्रित होते आये ।

मन्नन द्विवेदी गजपुरी (नव्य लेखक)

मेरे विचार में राम ने सीता-निर्वासन-जनित घोर पाप का प्रायश्चित्त अपने विलापों से किया है । प्रबल अश्रुधारा से उन्होंने अपने चरित्र की कालिमा को बहुत अंश में धो दिया है । भवभूति के राम ने अपने जीवन से "वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुरुमादपि" को चरितार्थ किया है । यदि भवभूति ने राम में कोमलता सन्निवेशित न किया हाता तो वह "वज्रादपि कठोराणि" मात्र रह जाते ।

इन उपर्युक्त उदाहरणों से प्रकट है कि पहले तो हिन्दी-शब्द में ब्रजभाषा का प्रयोग नहीं होता था, परन्तु महात्मा गोरखनाथ के समय में ब्रजभाषा ने ऐसा बल प्राप्त कर लिया

मोहनलाल द्विज (सं० १२४७ वि०)

एक रदन वारन वदन सदन बुद्धि गुण गेह ।
 गवरि नंद आनंद दें मोहन प्रणति करेह ॥
 गुरु सारद के गुन गिनौ भूले वरन बनाय ।
 अच्छर गन समझौ नहीं ताते होउ सहाय ॥
 अब जनेत सजिके चली बनि बनि विविध बनाय ।
 बरना आदि बरात सब बरतर उतरी आय ॥
 आग्यौनी तोरन भयौ करयो व्याह तिहि बार ।
 भयो प्रात कीनी दया अब बरनौ बड़हार ॥
 सब सज्जन आए तबैं ठाड़े समधी द्वार ।
 हंसि हंसि कै श्री नन्द सौ मिलि मिलि करत जुहार ॥
 व्रज देश सुहेरं पुरी कुम्हेरं बास हमेरं सदां रहैं ।
 द्विज मोहनलालं अद्भुत हालं..... ॥

सुनौ कहौ यह सम्बत जानौ ।
 बारह सौ जो सेंतालानौ ॥
 साउन सुदी साजन मन रंगी ।
 छंद बभंगी पत्तलि चंगी ॥

चन्द पुत्र जलहन कवि (१२५० के पीछे)

परयो सम्भरी राय दीसै उतंगा ।
 मनौ मेरु बज्री कियं शृंग भंगा ॥
 जिनें बार बारं सुरत्तान साह्यो ।
 जिनें भीज के भीम चालुक गाह्यो ॥
 जिनें भंजि मैवात द्वै बार बंध्यो ।
 जिनें नाहरं राइ गिरनार संध्यो ॥
 जिनें भंजि थट्टा सुकढ्यो निकन्द ।
 जिनें भंजि महिपाल रिनथंभ दवं ॥

पद्य-विभाग ।

(१) पूर्व प्रारम्भिक हिन्दी (संवत् १३४३ तक वि०)

भुवाल कवि (संवत् १००० वि०)

प्रणमौ आदि अलष..... । मेरे तन मा होई निस्तारा ॥
 सुमिरौ गुरु गोविंद के पाऊं । अगम अपार है ताकर नाऊं ॥
 कहुँ नामयुत अंतर जामी । भगति भाव देहु गरुडा गामी ॥
 दीन दयाल तू बाल कन्हारै । अपने जन को होई सहाई ॥
 कृपा करहु तू अंतर जामी । निर्मल अच्छर कहौ बखानी ॥

॥ दोहा ॥

कृपा करो करना सु मय, विनती सुनो चित मोरी ।
 भगति भाव देहु हम सामी, कहि भुआल कर जोरी ॥

* * *

संवत कर अब करौ बषाना । सहस्र सो संपूरन जाना ॥
 माघ मास कृष्ण पक्ष भएऊ । दुतिया रवि तृतीया जो भैऊ ॥
 तेहि दिन कथा कीन मन लाई । हरिके नाम गीता चित आई ॥
 संत साध को सुमिरन करऊं । हरि गुन कथा हिरदै आमो धरऊं ॥
 और कछु नहि भाषौं आन । गावौं गीता गुन भगवान ॥

चन्द कवि (सं० १२२५—४६ वि०)

हंस होत गति भंग मोर कटु सबद उचारै ।

रोवत कौंच कुरंग सुकपि छंडत आहारै ॥

सूआ वमन करंत निकुल कुकुट मित्राई ।

ऐसे चरित करंत जानि आगम दिनाई ॥

चक्रोर परस्पर हित रहित कहत चन्द पारष लहि ।

तिहि काज आनि रण्यत इनहि भूपति भोजन साल महि ॥

विधि विधि भाँति सुरावल रखै । पूजा देव समान सुसजै ॥

अति आनन्द सेव सह सारं । तब सुअ पंग आय परिहारं ॥

महात्मा कबीरदास जी (सं० १४७५ वि०)

जल थल पृथ्वी गगन में बाहर भीतर एक ।
 पूरण ब्रह्म कबीर है अवगत पुरुष अलेख ॥
 गला काटि विसमिल करें ते काफ़र वे बूझ ।
 औरन का काफ़र कहैं अपना कुफ़र न सूझ ॥

.....

लोका मति का भोरा रे ।

जो काशी तन तजै कबीरा रामै कौन निहोरा रे ॥
 तब हम वैसे अब हम ऐसे यही जनम का लाहा ।
 ज्यों जल में जल पैसन निकसे यों दुरि मिला जोलाहा ॥
 राम भगति पर जाको हित चित ताको अचरज काहा ।
 गुरु प्रताप साधु संगति जग जीतैं जाति जोलाहा ॥
 कहत कबोर सुनौ रे संतौ भरम परौ जनि कोई ।
 जस काशी तस मगहा ऊसर हृदय र'म जो होई ॥

नामदेव (सं० १४८० वि०)

अभि अन्तर काला रहै बाहेर करै उजास ।
 नाम कहै हरि भगति बिनु निहचै नरक निवास ॥

बाबा नानक (सं० १५५० वि०)

गुन गोविन्द गायो नहीं जनम अकारथ कीन ।
 नानक भजुरे हरि मना जेहि बिधि जल को मीन ॥

कुतबन शेख (सं० १५६० वि०)

धरम दुदिस्टिल उनको छाजा । हम सिर छाँह जियो जग राजा ॥
 दान देइ औ गनत न आवै । बलि औ करन न सरबरि पावै ॥

८६ हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास [सं० १३४४ वि०]

(२) उत्तर प्रारम्भिक हिन्दी (सं० १३४४—१३५४ वि०)

नरपति नाल्ह (सं० १३५४ वि०)

जब लगि महियल उगगइ सूर । जब लगि गंग बहइ जल पूर ॥

जब लगि प्रीथमी नै जगंनाथ । जाणी राजा सिर दीधौ हाथ ॥

नल्लसिंह (सं० १३५५ वि०)

ईराण तेरि तूराण असि खौसिर बंग खंधार सब ।

बल बंड पिण्ड हिं दुवान हद चढ़िव बीर विजै पाल तब ॥

शारंगधर (सं० १३५७ वि०)

सिंह गमन सुपुरुष वचन कदलि फरै इक सार ।

तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार ॥

अमीर खुसरो (सं० १३७० वि०)

आदि कटे से सब को पालै । मध्य कटे से सब को घालै ॥

अन्त कटे से सब को मीठा । सो खुसरो मैं आंखें दीठा ॥

महात्मा गोरखनाथ (सं० १४०७ वि०)

नीरा रम्भे चेला कूंड विधि रहे । सत गुरु होय सो पुछ्या कहै ॥

अवधू रहिया हाटे घाटे रूख बिरख की छाया ।

तजिवा काम क्रोध लोभ मोह संसार की माया ॥

(३) पूर्व माध्यमिक हिन्दी (सं० १४४५—१५६० वि०)

विद्यापति ठाकुर (सं० १४४५ वि०)

सरस बसंत समय भल पाओलि दछिन पवन बहु धीरे ।

सपनहु रूप वचन यक भाषिय मुख सँदुर करु चीरे ॥

जइति देखिल पथ नागरि सजनी आगरि सुबुधि सयानि ।

कनक लता सम सुन्दरि सजनी विह निरमावल आनि ॥

कत सुख सार पाओल तुव तीरे । छंड़ इत निकट नयन बहु नीरे ॥

कर जोरि बिनमौ बिसल तरंगे । पुन दरसन हो पुनमति गंगे ॥

हिन्दी का विकास] मध्यकालिक पद्य के नमूने

८६

मीरा बाई (सं० १६०० वि०)

बसो मेरो नैनन में नंदलाल ।

मोहनि सूरति सांवरि सूरति नैना बने रसाल ॥

मोर मुकुट मकराहत कुण्डल अरुन तिलक दिये भाल ।

अधर सुधारस मुरली राजति उर वैजन्ती माल ॥

कृष्णदास पय आहरी (सं० १६०० वि०)

आवत लाल गोवर्द्धन धारी ।

आलस नैन सरस रस रंगित प्रिया प्रेम नूतन अनुहारी ॥

विलुलित माल मरगजी उर पर सूरति समर की लगी पराग ।

चूँवत स्याम अधर रस गावत सूरति भाव सुख भैरव राग ॥

पलटि परे पट नील सखी के रस में भीलत मदन तड़ाग ।

वृन्दावन वीथिन अवलोकत कृष्णदास लोचन बड़ भाग ॥

नरोत्तमदास (सं० १६०२ वि०)

सिच्छक हों सिगरे जग को गुरु ता कहँतू अबदेति है सिच्छा ।

जे तप कै परलोक सुधारत सम्पति की तिनको नहिँ इच्छा ।

मेरे हिये हरि के पद पंकज बार हजार लै देखु परिच्छा ।

औरन को धन चाहिये वावरि वाँभन को धन केवल भिच्छा ॥

द्वारिका जाहु जू द्वारिका जाहु जू आठहु जाम यहै बकठानी ।

जातहि देहँ लदाय लड़ा भरि ऐहँ लिये तूयही जिय जानी ।

पावँ कहाँते अटारी अटा जिनको है लिखी विधि टूटी सी छानी ।

जो पै दरिद्र लिलार लिख्यो कहि को तेहि मेदि सकैगो अयानी ॥

श्री स्वामी हरिदासजी (सं० १६०७ वि०)

भजत भजनीय मति शयति रुचिरं चिरं

चरण युगलं सकल गुण सुललितं ।

वदतु हरिदास इति मा भवतु मुक्तिरपि

भवतु मम देव सुत जन्म फलितं ॥

सेन (सं० १५६० वि०)

जब सेां गोपाल मधु बन को सिधारे आली

मधु बन भयो मधु दानव विखम सों ।

सेन कहै सारिका सिखंडी खंजरीट सुक

मिलि कै कलेस कीनो कालिंदी कदम सों ॥

(४) प्रौढ़ माध्यमिक हिन्दी (सं० १५६१—१६८० वि०)

महात्मा श्री सूरदासजी (सं० १५६१ से १६२० वि० तक)

राधा ढंग हैं रीतेरे ।

वैसे हाल मथत दधि कीने हरि मनु लिखे चितेरे ॥

तेरो मुख देखत ससि लाजै और कहौ क्यों वाचै ।

नैना तेरे जलज जीत हैं खंजन ते अति नाचै ॥

चपला ते चमकत अति प्यारी कहा करैगी स्यामहिं ।

सुनहु सूर ऐसेहि दिन खोवत काज नहीं तेरे धामहिं ॥

श्रीस्वामी हितहरिवंश जी (सं० १५८० वि०)

ब्रज नव तरुनि कदम्ब मुकुट मनि स्यामा आजु बनी ।

नख सिख लौं अंग अंग माधुरी मोहै स्याम धनी ॥

यो राजत कवरी गूथित कच कनक कंज बदनी ।

चिकुर चन्द्रकनि बीच अरध विधु मानहु ग्रसत फनी ॥

कृपाराम (सं० १५६८ वि०)

लोचन चपल कटाच्छ सर अनियारे विष पूरि ।

मन मृग बेधैं मुनिन के जग जन सहित विसूरि ॥

मलिक मोहम्मद जायसी (सं० १६०० वि०)

गोरइ दीख साधु सब जूझा । अपन काल नेरे भा बूझा ॥

कोपि सिंह सामुह रन मेला । लाखन सों ना मरै अकेला ॥

जेइ सिर देइ कोपि तरवारू । सइ घोड़े दूटइ असवारू ॥

तुरुक बोलावइ बोलइ नाहां । गोरइ मीचु धरी मन माहां ॥

सम्प्रति सम्प्रतिवान को सब कोऊ बसु देत ।
 दीनबन्धु विन दीन की को रहीम सुधि लेत ॥
 अब रहीम मुसकिल परी गाढ़े दोऊ काम ।
 साँचे से तौ जग नहीं भूठे मिलैं न राम ॥

रसखान (सं० १६४५ वि०)

छूटी लोक लाज गृह काज मन मोहनी के।
 मोहन को भूलि गयो मुरली बजायबो ।
 अब रसखानि दिन द्वै मैं बात फैलि जैहै
 सजनी कहाँ लौं चन्द हाथन दुरायबो ॥
 काल्हि ही कलिन्दी तीर चितये अचानक ही
 दुहुन की ओर दोऊ मुरि मुसकायबो ।
 दोऊ परैं पैयाँ दोऊ लेत हैं बलैयाँ
 उन्हें भूलि गई गैयाँ इन्हें गागरि उठायबो ॥

मोर पखा सिर ऊपर राजत गुज की माल गरे पहिरौंगी ।
 ओढ़ि पितम्बर लै लकुटी बन गावत गोधन संग फिरौंगी ।
 भावैरी तोहि कहा रस खानि सो तेरे लिए सब स्वांग करौंगी ।
 या मुरली मुरलीधर की अघरान धरी अधरा न धरौंगी ॥

केशवदास (सं० १६४८ वि०)

सोभित मंचन की अवली गज दन्त मई छवि उज्ज्वल छाई ।
 ईस मनो वसुधा मैं सुधारि सुधाधर मंडल मंडि जुन्हई ॥
 ता महुँ केशवदास बिराजत राजकुमार सबै सुखदाई ।
 देवन सों मिलि देव सभा जनु सीय स्वयम्बर देखन आई ॥

नाभादास (सं० १६५७ वि०)

अवधपुरी की सोभा जैसी । कहि नहिँ सकहिँशेख श्रुति तैसी ॥
 रचित कोट कलधौत सोहावन । विविधरंग मनि अतिमन भावन ॥

गंग (सं० १६१५ वि०)

भुक्त कृपान मयदान ज्यों उदोत भान
 एकन ते एक मनौ सुखमा जरद की ।
 कहै कवि गंग तेरे बल की बयारि लागे
 फूटी गज घटा घन घटा ज्यों सरद की ।
 येते मान सेनित की नदियाँ उमड़ि चलीं
 रही ना निसानी कहूँ महि मैं गरद का ।
 गौरी गह्यो गिरिपति गनपति गह्यो गौरी
 गौरीपति गह्यो पूछ लपकि बरद की ॥

गोखामी श्री तुलसीदासजी (सं० १६३१—८० वि०)

पुनि वन्दौं खल गन सति भाये । जे विनु काज दाहिने बांये ॥
 पर हित हानि लाभ जिन केरे । उजरे हरष विषाद बसेरे ॥
 प्रनवउं खल जस सेस सरोसा । सहस बदन बरनइं पर दोसा ॥
 पुनि प्रनवउं पृथुराज समाना । पर अघ सुनै सहसदस काना ॥
 बहुरि शक्र सम विनवउं तेही । सन्तत सुरानीक हित जेही ॥
 बचन बज्र जेहि सदा पियारा । सहस नयन पर दोस निहारा ॥
 हरि हर जस राकेस राहु से । पर अकाज भट सहस बाहु से ॥
 जे परदोस लखहिँ सहसाखी । पर हितघृत जिनके मन माखी ॥
 उदय केतु सम हित सबही के । कुम्भकरन सम सोवत नीके ॥
 पर अकाज लगि तनु परिहरहीं । जिमि हिमउपलकृषी दलि गरहीं ॥

उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिँ खल रीति ।
 जानु पानि जुग जोरि कै विनती करौं सप्रीति ॥

खानखाना (सं० १६४० वि०)

खैर, खून, खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मधुपान ।
 रहिमान दावे ना दवै जानत सकल जहान ॥

मेरे जान पौन सीरे ठौर को पकरि कोनो
 घरी एक बैठि कहूँ घामै बितवत है ॥
 राजा शम्भुनाथ सुलंकी (सं० १७०७ वि०)
 कौहर कौल जपा दल विद्रुम
 का इतनी जु बँधूक मैं कोति है ।
 रोचन रोरी रची मेहदी नृप शम्भु भनै
 मुकता सम पोति है ॥
 पांय धरै ढरै ईगुरई तिन मैं
 खरी पायल की घनी जोति है ।
 हाथ द्वै तीनिक चारि हू ओर लौं
 चांदनी चूनरी के सँग होति है ॥
 बिहारोलाल (सं० १७१० वि०)
 नभ लाली चाली निसा चटकाली धुनि कीन ।
 रति पाली आली अनत आये वनमाली न ॥
 मोर मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल ।
 यह बानिक मो मन वसौ सदा बिहारीलाल ॥
 सबलसिंह (सं० १७१८ वि०)
 गज मुख सुखकर दुख हरन तोहि कहाँ सिर नाय ।
 कीजै जस, लीजै बिनै, दीजै ग्रन्थ बनाय ॥
 कुलपति मिश्र (सं० १७२७ वि०)
 ऐसिय कुंज बनै छवि पुंज रहैं अलि गुंजत यों रस लीजै ।
 नैन बिसाल बहै वन माल विलोकत रूप सुधा भरि पीजै ॥
 जामिनि जाम कि कौन कहै जुग जात न जानिये ज्यों छिनछीजै ।
 आनंद यों उमगोई रहै पिय मोहन को मुख देखिबो कीजै ॥
 (कविराज) सुखदेव मिश्र (सं० १७२८ वि०)
 कानन दूटैं विघन के जानन ते यह ज्ञान ।
 कज आनन की जात मिटि गज आनन के ध्यान ॥

मुबारक (सं० १६९० वि०)

कान्ह की बाँकी चितौनि चुभी जव
 काहि ते भाँकी है ग्वाल गवाच्छनि ।
 देखी है नोखी सी चोखी सी कोरनि
 ओछे फिरैं उभरैं चित जा छनि ॥
 मारेई जात निहारे मुबारक
 है सहजै कजरा मृग आछनि ।
 सीक लै काजर दे री गँवारनि
 आँगुरी तेरी कटैगी कटाछनि ॥

(५) पूर्वलिखित हिन्दी (सं० १६८१—१७६० वि०)

चिन्तामणि त्रिपाठी (सं० १६६० वि०)

पई उधारत हैं तिन्हें जे परे मोह महोदधि के जल फेरे ।
 जे इनको पल ध्यान धरैं मन ते न पर कबहुँ जम घेरे ॥
 राजैरमा रमनी उपधान अभै बरदानि रहै जन नेरे ।
 हैं बल भार उदंड भरे हरि के भुजदंड सहायक मेरे ॥

महाराजा जसवन्तसिंह (सं० १६६५ वि०)

मुख ससि वा ससि सां अधिक उदित जो त दिन राति
 सागर ते उपजी न यह कमला अपर सोहाति ॥

सेनापति (सं० १७०६ वि०)

वृष को तरनि तेज सहसौ करनि तपै
 ज्वालनि के जाल विकराल वरसत है ।
 तपति धरनि जग भुरत भुरनि सीरी
 छांह को पकरि पंथी पंछी विरमत है ॥
 सेनापति नेक दुपहरी ढरकत होत
 जो न पात खरकत है ॥

देवदत्त (सं० १७४६ वि०)

होत सबै रज वीरज सेाँ अरु जात अपत्थ कुपत्थन डाँड़े ।
 एकहि रूप गढे सिगरे मनु एकै उम्हार कुम्हार के भाँड़े ॥
 तापर ऊँच और नीच विचार वृथा बकि बाद बढ़ावत चाँड़े ।
 बेदन मूँदु करी इन दूँद, कि सूद, अपावन पावन पाँड़े ॥
 पायन नूपुर मंजु वज्रै कटि किंकिनि की धुनि की मधुराई ।
 साँवरे अंग लसै पट पीत हिये हुलसै वनमाल सोहाई ॥
 माथे किरीट बड़े दृग चंचल मन्द हँसी मुख चन्द जोन्हाई ।
 जै जग मन्दिर दीपक सुन्दर श्री ब्रज दूलह देव सहाई ॥

छत्र (सं० १७५७ वि०)

दीरघ तनु, दीरघ भुजा, दीरघ पौरुष पाय ।
 कादर हूँ बैठे सदन बहु बलवन्त कहाय ॥

वैताल (सं० १७६० वि०)

मर्द सीस पर नवै मर्द बोली पहिँचानै ।
 मर्द खवावै खाय मर्द चिन्ता नहिँ मानै ॥
 मर्द देय औ लेय मर्द को मर्द बचावै ।
 गाढ़े सकरे काम मर्द के मरदै आवै ॥

पुनि मर्द उनहिँ को जानिये दुख सुख साथी दर्द के ।
 वैताल कहै विक्रम सुनौ ए लच्छन हैं मर्द के ॥

कवीन्द्र (सं० १७६२ वि०)

कूरम नरिन्द गज सिंह जू के चढ़े दल
 लंक लौ अतंक वंक संक सरसाती है ।
 भनत कबिन्द बाजै दुन्दभी धुकार भारी
 धरा धसमसै गिरि पाँती डगलाती है ॥

कालिदास (सं० १७३० वि०)

गढ़न गढ़ी से गढ़ि, महल मढ़ी से मढ़ि
बीजापुर ओप्यो दलमलि सुघराई मैं ।
कालिदास कोप्यो वीर औलिया अलमगीर
तीर तरवारि गही पुहुमी पराई मैं ॥
बूंद ते निकसि महि मंडल घमंड मची
लोहू की लहरि हिमगिरि की तराई मैं ॥
गाड़ि कै सुभंडा आड़ कीन्ही पातसाह ताते
डकरी चमुंडा गोलकुंडा की लराई मैं ॥

भूषण त्रिपाठी (सं० १७३१ वि०)

हैबर हरट्ट साजि गैबर गरट्ट सम
पैदर के ठट्ट फौज जुरी तुरकाने की ।
भूषन भनत तहाँ चम्पति को छत्रसाल
रोप्यो रन ख्याल हूँ कै ढाल हिन्दुवाने की ॥
कैयक हजार एक बार बैरी मारि डारे
रंजक दगनि मानो अगिनि रिसाने की ।
सैद अफगन सेन सगर सुतन लागी
कपिल सराप लौं तराप तोपखाने की ॥

मतिराम (सं० १७३७ वि०)

कोऊ नहीं बरजै मतिराम रहै तितही जितही मन भायो ।
काहे को सोहैं हजार करौ तुम तौ कबहुँ अपराध न ठायो ॥
सोवन दीजै, न दीजै हमैं दुख, योंहीं कहा रस बाद बढ़ायो ।
मान रह्योई नहीं मन मोहन ! मानिनो होय सो मानै मनायो ॥

वृन्द (सं० १७४३ वि०)

उद्यम कबहुँ न छाँड़िये पर आसा के मोद ।
गागरि कैसे फोरिये उनयो देखि पयोद ।

गंजन (सं० १८७६ वि०)

पेल परी अलकामैं खल भल खलका में
एतो बल कामैं जे रहत निज थान हैं ।

गंजन सुकवि कहै माल मुलकनि तजि
रज रजपूती तजि तजत गुमान हैं ॥

रानी तजि पानी तजि कर किरवानी तजि
अति विहबल मनभानत न आन हैं ।

ह्वै करि किसान भूप भागत दिसान जब
कमरुदी खान जू के बाजत निसान हैं ॥

(६) उत्तरालंकृत हिन्दी (सं० १७६१—१८८६ वि०)

दास (सं० १७६१ वि०)

ऊधो तहांईं चलौ लै हमैं जहँ कुवरी कान्ह बसैं यक ठरी ।

देखिये दास अघाय अघाय तिहारे प्रसाद मनोहर जोरी ॥
कूबरी सेां कछु पाइये मन्त्र बढ़ाइये कान्हसों प्रेम की डोरी ।

कूबर भक्ति बढ़ाइये बन्दि चढ़ाइये चन्दन बन्दन रोरी ॥

राजा गुरुदत्तसिंह (सं० १७६२ वि०)

अति सौरभ सहवास ते सहज मधुर सुख कन्द ।

होत अलिन को नलिन ढिग सरस सलिल मकरन्द ॥

रघुनाथ (सं० १७६६ वि०)

सुधरे सिलाह राखै, वायु वेगी बाह राखै,
रसद की राह राखै, राखे रहै वनको ।

चोर को समाज राखै, बजा औ नजर राखै,
खबरि के काज बहुरूपी हरफन को ॥

अगम भखैया राखै, सकुन लेवैया राखै,
कहै रघुनाथ औ विचार बीच मन को ।

कमठ की पीठ पर सेस के सहस फन
 दिया लौं दवात उमगात अधिकाती है ।
 फनन ते बाहर निसरि छै हजार जीमें
 स्याह स्याह बाती लौं बुझाती रहि जाती है ॥

लाल (सं० १७६५ वि०)

ऐंड़ एक सिवराज निवाही । करै आपने चित की चाही ॥
 आठ पातसाही भकभोरे । सूबनि पकरि दंड लै छोरे ॥
 चहुँ ओर सों सूबन घेरो । दिसनि अलात चक्र सां फेरो ॥
 कवहुँ प्रकटि जुद्ध में हाँकै । मुगलनि मारि पुहुमि तल ढाँकै ॥
 बाननि वरषि गयन्दनि फोरै । तुरकनि तमकि तेग तर तोरै ॥
 कवहुँ जुरै फौज सो आछे । लेइ लगाय चाल दै पाछे ॥
 कवहुँ उमड़ि अचानक आवै । घन से घुमड़ि लोह बरसावै ॥
 कवहुँ हाँकि हरौलिन कूटै । कवहुँ चापि चँदालिन लूटै ॥
 महाराज अजीतसिंह (सं० १७६७ वि०) मारवाड़-नरेश

पीताम्बर कछनी कछे उर वैजन्ती माल ।
 अँगुरी पर गिरिवर धरखो संग सवै ब्रजबाल ॥

घन आनन्द (सं० १७७१ वि०)

गाइहों देवी गनेस महेस दिनेसहि पूजत ही फल पाइहों ।
 पाइहों पावन तीरथ नीर सुनेकु जहीं हरि को चित लाइहों ॥
 लाइहों आछे द्विजातिन को अरु गोधन दान करों चरचाइहों ।
 चाइ अनेकन सों सजनी घन आनंद मीतहिँ कंठ लगाइहों ॥

महाराजा नागरीदास (सं० १७८० वि०)

यक मिलत भुजन भरि दौरि दौरि । यक टेरि बोलावत औरि औरि ॥
 कोउ चले जात सहजै सुभाय । पद गाय उठत भोगहि सुनाय ।
 अतिसै विरक्त जिनके सुभाव । जे गनत न राजा रंक राव ॥
 ते समिटि समिटि फिरि आय आय । फिरि छाँड़त पद पढ़वाय गाय

हिन्दी का विकास]

उत्तरालंकृत पद्य

६६

दूलह (सं० १८०२ वि०)

दीरघ मत सत कविन के अरथासै लघु तर्न ।

कवि दूलह याते कियो, कवि कुल कंठाभर्न ॥

.....

उपमान जहाँ उपमेयता लेइ तहाँ पहिलाई प्रतीप गनो ।
 कुच से कमनीय बने करि कुम्भ कहै कवि दूलह लोक बनो ॥
 उपमान जहाँ उममेयता दै फिरि ताहि अनादरै दूजो भनो ।
 सखि नैननि कां जनि जोम करो इनके सम सोहत कंज बनो ॥

सूदन (सं० १८११ वि०)

ऊतरु यह दैके, दूत पठै कै, असद खान हिय रोस भसो ।
 बोल्यो सबमीरन, चित के धीरन, जिन न चरन रन उठि धसो ॥
 तुम करो तयारी, सब इस बारी, मैं दिल यह इतकाद कसो ।
 सुभका तौ लरना, देर न करना, आय साहि का काज पसो ॥

बैरीसाल (सं० १८२१ वि०)

करत कोकनद मदहि रद तव पद हृद सुकुमार ।
 भये अरुन अति दबि मनो पायजेव के भार ॥
 गोकुलनाथ, गोपीनाथ, मणिदेव (सं० १८२८ वि०)
 कसि मस्तकहि वितुंड सो गरजत सुंड उठाय ।
 धाय जाय जुग पाय सौं हने तुरग समुदाय ॥
 हनि तुरगन रथ महि मरदि जब गरजां गज घोर ।
 तबहिं भीम गो द्विरद के पिछले पग को आर ॥
 लगे। पिछौंहीं मूक प्रहारन । घूमन लगे द्विरद गुनि धारन ॥
 फिरोचक्रसममैगलजिमिजिमि।तासँगफिरोवृकोदरतिमितिमि।
 यहि विधि धरिक घूमि रन करकस । कूदि सामनेगयो अथरकस ॥
 सब करकुंडलमधितेहिकरिकै।पग सौंहननलगे गज अरिकै ॥

६८ हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास [सं० १८०० वि०]

बाजी हारै कबहु न औसर के परे जौन
ताजी राखै प्रजन को, राजी सुभटन को ॥

चाचा वृन्दावनदास (सं० १८०० वि०)

सुन्दरता की हृद मुरलीधर बेहद छवि श्री राधा ।
गावै वपु अनन्त धरि सारद तऊ न पूजै साधा ॥
न्याय काम करवट है निकसत पिय अरुरूप गुमानी ।
वृन्दावन हित रूप कियो वस सो कानन की रानी ॥

गिरिधर कविराय (सं० १८०१ वि०)

साईं ये न विरोधिये गुरु, पंडित, कवि, यार ।
बेटा, बनिता, पौरिया, यज्ञकरावनहार ॥
यज्ञकरावनहार रात-मन्त्री जो होई ।
विप्र, परोसी, बैद, आपु को तपै रसोई ॥
कहि गिरिधर कविराय बात चतुरन के ताई ।
इन तेरह ते तरह दिये बनि आवै साईं ॥

नूर मुहम्मद (सं० १८०१ वि०)

बहेउ पवन लट पर अनुरागे । लट छितरानि पवन के लागे ॥
परी बदन पर लट सटकारी । तपी दिवस भा निसि अँधियारी ॥
मोहि परा दरसन कर चेरा । हना वान धन आँखिन केरा ॥
यह मुख, यह तिल यह लटकारी । येतो कहिकै गिरा भिखारी ॥

ठाकुर (सं० १८०१ वि०)

वा निरमोहिनि रूप कि रासि न ऊपर के मन आनति है है ।
बारिहि बार विलोकि घरी घरी सूरति तौ पहिचानति है है ॥
ठाकुर या मन की परतीति है जो पै सनेह न मानति है है ।
आवत हैं नित मेरे लिए इतनो तो विशेष ही जानति है है ॥

हिन्दी का विकास] उत्तरालंकृत पद्य के उदाहरण १०१

थान (सं० १८४८ वि०)

जै लम्बोदर सम्भु सुवन अम्भोरुह लोचन ।
चरचित चन्दन चन्द्रभाल वन्दन रुचि रोचन ॥
मुख मंडल गंडालि गंड मंडित श्रुति कुण्डल ।
वृन्दारक वर वृन्द चरन वन्दन अखंड बल ॥

बेनीप्रवीन (सं० १८७५ वि०)

जान्योन मैं ललिता अलि ताहि जु सोवत मांझ गई करि हासी ।
लाये हिये नख केहरि के सम मेरी तऊ नहि नौद बिनासी ॥
लै गई अम्बर बेनी प्रवीन ओढ़ाय लटी दुपटी दुख रासी ।
तेरि तनी तन छोरि अभूषन भूलि गई गल देन को फासी ॥

✓ पद्माकर (सं० १८७६ वि०)

मल्लिकान मंजुल मलिन्द मतवारे मिले
मन्द मन्द मारुत सुहीम मनसा की है ।
कहै पद्माकर त्यों नदन नदीन नित
नागरि नबेलिन की नजरि निसा की है ॥
दौरत दरेरे देत दादुर सु दूदैं दीह
दामिनि दर्मकनि दिसान मैं दसा की है ।
बदलनि बुन्दनि बिलोको बगुलानि बाग
बंगलन बेलिन बहार बरसा की है ॥

रामसहायदास (सं० १८७७ वि०)

मन रंजन तव नाम को कहत निरंजन लोग ।
जदपि अधर अंजन लगे तदपि न नौदन जोग ॥
भौंह उचै, अँखियाँ नचै, चाहि कुचै सकुचाय ।
दरपन मैं मुख लखि खरी दरप भरी मुसुकाय ॥

१०० हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास [सं० १८३० वि०]

तब धरि सुं ड घूमि सों भट बर । गयो मत्त मैगल के उत्तर ॥
 तेहि छन सार भयो वहिदल मै । भीमहि बध्यो हिरद यहि पल मै ॥
 सो सुनिधर रसे चसों मदि कै । घेरयो गजहि रथिन सह बदि कै ॥
 तेहि छन नृप श्रं वु रु के चारन । कियो असंख्य सरन को वारन ॥
 हिरद बढ़ाय चलो भय छावन । पग सों चाहि रथिन मरदावन ॥
 तब निज हिरद बढ़ाय सुवीरा । भिरो दसानाधिप रनधीरा ॥

बोधा (सं० १८३० वि०)

एक सुभान के आनन पै कुरवान जहाँ लगि रूप जहाँ को ।
 कैयो सतव्रत की पदवी लुटियै लखि कै मुसकाहट वाको ॥
 सोक जरा गुजरा न जहाँ कवि बोधा जहाँ उजरा न तहाँ को ।
 जान मिलै तौ जहान मिलै नहि जान मिलै तौ जहान कहां को ॥

सीतल (सं० १८३१ वि०)

हम खूब तरह से जान गये जैसा आनंद का कन्द किया ।
 सब रूप, सील, गुन, तेज पुंज तेरे ही तन में वन्द किया ॥
 तुझ हुरन भा की बाकी लें फिरावधि ने यह फरवन्द किया ।
 चम्पकदल, सोन जुही, नरगिस, चामीकर, चपला, चन्द किया ॥

रामचन्द्र (सं० १८४१ वि०)

✓ लोभ भकभोरन ते, मदन हिलोरन ते,
 भारी भ्रम भौरन ते कैसे थिर रहती ।
 दुख दुम डारन ते, पातक पहारन ते,
 कुमति कगारन ते कैसे कै निवहती ॥
 जरा जन्तु ओकन के, चिन्ता जल ढोकन के,
 रोग सोक मोकन के भोंक कैसे सहती ।
 होते जो न आजु तेरे चरन करन धार,
 मैया यह नैया मेरी कैसे पार लहती ॥

हिन्दी का विकास] वर्तमान पद्य के उदाहरण १०३

जंजीर जुल्फ़ जाना ने लटकाली है ।
काली है फ़िदा जिस पर नागिन काली है ॥

द्विजदेव महाराजा मानसिंह [सं० १६०७ वि०]

सोधे समीरन को सरदार मलिन्दन को मनसा फलदायक ।
किसुक जालन को कलपद्रुम मानिनी वालन हू को मनायक ॥
कन्त इकन्त अनन्त कलीन को दीनन के मन को सुखदायक ।
सांचो मनोभव राज को साजसु आवत आज इतै ऋतुनायक ॥

सेवक [सं० १६११ वि०]

अँगना में बोलाय घनी अँगना कँगना पहिराय दे जोसिनी को ।
दछिना दिल खोलि कै दीजै अली री बधाई सुनाय सतोसिनीको ॥
कवि सेवक पायँ परौ सबके विधि दाहिने आजु अदोसिनी को ।
तजि औषध मैं तो अराम भई पति आयगो मेरी परोसिनीको ॥

राजा लक्ष्मणसिंह [सं० १६१७ वि०]

मीत के मन्दिर जात चली मिलिहैं तहँ केतिक राति मैं नारी ।
मारग सूझि तिन्है न परै जव सूचिका भेद भुकेँ अँधियारी ॥
कंचन रेख कसौटी सि दामिनी तू चमकाइ दिवाइ अगारी ।
कीजियो ना कहूँ मेह कि घोर मरै अवला अकुलाय बिचारी ॥

[८] वर्तमानकालिक हिन्दी (सं० १६२६-ग्रंव तक)

भारतेन्दुजी (सं० १६२६ वि०)

✓ चूरन खाते यडिटर जात । जिनके पेट पचै नहिँ बात ।
चूरन अमला वाले खावैँ । दूनी रिशवत तुरत पचावैँ ॥
चूरन पूलिस धाले खाते । सब कानून हज़म कर जाते ।
चूरन सभी महाजन खाते । जिससे जमा हज़म कर जाते ॥

ग्वाल (सं० १८७६ वि०)

सोहत सजीले सित असित सुरंग अंग

जीन सुचि अंजन अनूप रुचि हेरे हैं ।

सील भरे लसत असील गुन साल दै के

लाज की लगाम काम कारीगर फेरे हैं ॥

घूँघट फरस ताने फिरत फवित फूले

ग्वाल कवि लोक अवलोकि भये चेरे हैं ।

मोर वारे मन के, त्यों पन के मरोर वारे

त्योर वारे तरुनी तरंग द्रुग तेरे हैं ॥

चन्द्रशेखर (सं० १८८० वि०)

मारे गढ़ चक्रवै हमीर चहुवान चक्र

डारे गोल गरद मिलाय मद मानी के ।

लोटे रेत खेत, एकै मोटे लेत देत एकै

चोटन समेत लड़े लाड़िले पठानी के ॥

हारे, डर मारे, राह वसन हथ्यार डारे,

वाहन सम्हारै कौन भरे परेसानी के ।

भागे जात दिली के अलाउदीन वारे दल,

जैसे मीन जाल ते परत दिसि पानी के ॥

प्रताप [सं० १८८३ वि०]

पूजतीं और सबै वनिता जिनके मन में अति प्रीति सोहाति है ।

कौन की सीख धरी मन में चलि कै बलि काहे न जाक न जाति है ॥

साइति या बरसाइति की, बरसाइति ऐसी न और लखाति है ।

कौन सुभाव री तेरो परो बर पूजत काहे हिण सकुचाति है ॥

[७] परिवर्त्तनकालिक हिन्दी [सं० १८६०—१९२५ वि०]

गणेशप्रसाद [सं० १९०० वि०]

जावन पर जिसके शम्सोकमर चारी है ।

हर गुलशन में उस गुल की गुलजारी है ॥

हिन्दी का विकास] वर्तमान पद्य के उदाहरण

१०५

ब्राहि ब्राहि पुहुमी पर पड़ती लख मेरा भ्रू भंग ।
 सहे किसी ने नहीं एक छिन मेरे अस्त्र उतंग ॥
 बज्रपात सा हुवा व्योम से इस उन्नति पर दुखदाई ।
 हाय सही न गई जग पितु से मेरी गरिमा प्रभुताई ॥
 उस दयालु ने तो विरचे थे जग नर मात्र समान ।
 सहा जाय फिर कैसे उससे दस्यों का अपमान ॥

रघुनाथप्रसाद (सं० १९६० वि० वर्तमान)

धवल धाम कै ध्वजा नगर की प्रविसि रहीं धन माहीं ।
 कैधों ये हिम पूरित भूधर जहँ तहँ तुंग लखाहीं ॥
 रैन उज्यारी छटा लखे ते यों मन मैं भ्रम व्याप्यो ।
 जगमगात गोबरधन गिरि कोउ श्रम करि लै इत थाप्यो ॥

मैथिलीशरण गुप्त (सं० १९६२ वि० वर्तमान)

है जो आपत्ति आगे वह अटल नहीं, शीघ्रही नष्ट होगी ।
 कीर्ति श्री आपकी यों प्रलय तक सदा ओर सुस्पष्ट होगी ॥
 घरे क्या व्योम में है अविरत रहती सोम को मेघ माला ।
 होता है अन्त में क्या प्रकट वह नहीं और भी कान्ति वाला ।

लोचनप्रसाद पांडेय (सं० १९६२ वि० वर्तमान)

जिस कुल में हो जात जगत में ख्यात हुए हो ।
 जिस में रहकर भ्रात एक से सात हुये हो ॥
 उसका उदय उपाय हाय ! यदि तुम्हें न भाया ।
 व्यर्थ हुआ नर-जन्म हुई निष्फल यह काया ॥
 बन्धु-वर्ग को प्यार न करना जिसने सीखा ।
 विनय-युक्त व्यवहार न करना जिसने सीखा ॥
 जाति-देश-उपकरण न करना जिसने सीखा ।
 जन्म हुआ निःसार न मरना उसने सीखा ॥

प्रतापनाराण मिश्र (सं० १९४१ वि०)

(ब्राह्मण नामक पत्र के विषय में)

सदुपदेश नितही करें माँगें भोजन मात्र ।

देखौ हम सा जगत में कौन दान का पात्र ॥

(महावीरप्रसाद द्विवेदी (सं० १९५० वि० वर्तमान)

माता है जैसी पूज्य सुनौ है भाई ।

भाषा है उसी प्रकार महा सुखदाई ॥

माता से पूज्य विशेष देश-भाषा है ।

मिथ्या यह हमने बचन नहीं भाषा है ।

श्रीधर पाठक (सं० १९५० वि० वर्तमान)

ओस बुन्द ज्यों गिरें व्योम से कोमल, निरमल, सुखकारी ।

त्यों ये मृदुल बचन जोगी के लगे पथिक को दुखहारी ॥

नम्र भाव से कीन्ही उसने विनै समेत प्रनाम ।

चला साथ जोगी के हरखित जहाँ उसका विश्राम ॥

देवीप्रसाद पूर्ण ।

भारत तनु में हैं निविधि प्रान्त निवासी अंग ।

पंजाबी सिन्धी सुजन महाराष्ट्र तैलंग ॥

महाराष्ट्र तैलंग बंग देशीय बिहारी ।

हिन्दुस्तानी मध्य हिन्द जन वृन्द बरारी ॥

गुजराती उत्कली आदि देशी सेवा रत ।

सभी लोग हैं अंग बना है जिनसे भारत ॥

शिरमौर एवं शशिभाल (सं० १९५६ वि० वर्तमान) ।

रत्न जटित उस काल मुकुट मम सुखप्रद चारु चमकता था ।

चकाचौंध सारे जग में कर दामिनि सरिस दमकता था ।

हिन्दी का विकास] वर्तमान पद्य के उदाहरण १०७

कवियों का ध्यान गया है, परन्तु कुछ दिनों से पद्य-विभाग में कुछ शिथिलता आती देख पड़ती है। श्रुति-कटु का भी अब प्रयोग बढ़ रहा है, जिससे प्राचीन प्रथानुयायी लोग खड़ी बोली को दोष देते हैं। वर्तमान कवियों को उचित है कि भाषालंकारों को भरमार तो छोड़ दें, पर गुण-दोषों पर अवश्य ध्यान रखें। हिन्दी भाषा का प्रधान गुण श्रुतिमधुरता है। इसका जाना उचित नहीं है। प्राचीन प्रथा के कविगण अब भी ब्रजभाषा में रचना करते हैं। इनकी गणना अब तक खड़ी बोली वाले कवियों से अधिक है।

बेतुकान्त कविता का भी अब कुछ प्रचार हो चला है तथा अन्यान्य भाषाओं को देखकर नूतन वृत्तों का भी समावेश हिन्दी में होने लगा है। विविध विषयों की ओर भी हमारे कविगण ध्यान दे रहे हैं और प्रायः सभी प्रकार से हिन्दी की उन्नति दृष्टिगोचर होने लगी है। उधर देवनागरी अक्षरों के अधिकाधिक प्रचार द्वारा हिन्दी का साम्राज्य विस्तृत हो रहा है और कुछही दिनों में समस्त भारतवर्ष में नागरी अक्षरों एवं हिंदी भाषा के प्रचार होजाने की आशा की जा सकती है, पर इसमें इस बात पर ध्यान रखना आवश्यक है कि हमारे संस्कृत-प्रेमी-हिंदीज्ञातागण संस्कृत के क्लृष्ट सिद्धान्तों का हिंदी में विशेष समावेश करके ऐसी मनोबांछित दशा के उपस्थित होने में कहीं बाधक न बन बैठें। आशा है कि वे भी हिंदी को देशव्यापिनी होने में सहायता देकर यश के भागी होंगे। हिंदी का ज्ञान जितना सुगम होगा उतनाही इस भाषा का प्रचार बढ़ेगा।

इति

महादेवप्रसाद (वर्तमान)

जै देसराज सुर राज हिन्द । जै साज बाज सिरताज हिन्द ॥
 जै ज्ञान मान उपमान हिन्द । जै गुन मुंडित गुनखान हिन्द ।
 जै द्वीप हिन्द जै कर्म हिन्द । जै भक्ति भावना धर्म हिन्द ॥
 जै धीर हिन्द जै वीर हिन्द । जै सघनकुंज जलतीर हिन्द ॥
 जै सुख सरोज मकरन्द हिन्द । जै पूर्ण कलामति चन्द हिन्द ॥
 जै जन्म हिन्द जै मृत्यु हिन्द । जै जैति जैति जै जैति हिन्द ॥

.....

इन उदाहरणों से जान पड़ेगा कि कुतबन शेख (संवत् १५६० वि०) के समय तक प्रायः कोई भाषा हिन्दी में पूर्णरूपेण स्थिर नहीं हुई थी; कोई किसी भाषा में काव्य करता था, कोई किसी में। आदि में हिन्दी प्राकृत से कुछ मिलती-जुलती थी, परन्तु पीछे उसमें अवधी भाषा का प्राधान्य सा रहा। प्रौढ़ माध्यमिक काल (संवत् १५६० वि०) से ब्रजभाषा का बल विशेषतया बढ़ा, परन्तु फर भी तुलसीदास ने उसका सत्कार न करके अवधी को ही प्रधान माना। उधर कृष्णभक्त ब्रजभाषा का प्रयोग करते थे। इस प्रकार कथा प्रासंगिक कवियों में तुलसीदास का अनुगमन हुआ और शृंगारी कविताओं एवं स्फुट विषयों पर ब्रजभाषा का साम्राज्य फैला। यही दशा उत्तरालंकृत काल तक रही और भाषा दिनों दिन अलंकृत होती गई, यहाँ तक कि भूषण-वृद्धि से कविता को शरीर-क्षति होने लगी। इस भारी काल में केवल सीतल (सं० १८३१ वि०) ने खड़ीबोली का अच्छा सम्मान किया। परिवर्तन काल में खड़ीबोली का बल कुछ कुछ स्थापित हुआ, जो आधुनिक काल में कुछ बढ़ा और भविष्य में उसके बढ़ने की आशा है। अब मातृभूमि-महात्म्य, भ्रातृप्रेम आदि पर भी

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्य-विवरण तथा लेखमालाएँ

सम्मेलन के पिछले अधिवेशनों के इन कार्य-विवरणों में सम्मेलन के मनोनीत तथा स्वागत-समिति के सभापतियों के भाषण तथा सम्मेलन के अधिवेशनों की सम्पूर्ण कार्य-वाही आदि दी गयी है। इस प्रकार इन्हीं कार्य-विवरणों में सम्मेलन का इतिहास है। यदि आप सम्मेलन के अब तक के इतिहास का अध्ययन करना चाहते हैं तो इनका अवश्य अध्ययन कीजिए।

सम्मेलन का लेख-सम्मेलन के कार्य- मालाएँ विवरण

प्रथम सम्मेलन की लेख-माला	प्रथम सम्मेलन का कार्य-विवरण
द्वितीय	१) द्वितीय
तृतीय	॥) तृतीय
चतुर्थ	॥) चतुर्थ
पञ्चम	॥) पञ्चम
षष्ठम	॥) षष्ठम
सप्तम	॥) सप्तम
अष्टम	१) अष्टम
नवम	१॥) नवम
दशम	॥) दशम
द्वादश	१॥) त्रयोदश
त्रयोदश	१)
चतुर्दश	॥) निवेदक—

मंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

सुलभ-साहित्य-माला की पुस्तकें

१—भूषण-ग्रन्थावली (सटिप्पण), २—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—ले० श्री 'मिश्र-बन्धु', ३—भारत-गीत—ले० श्री० पं० श्रीधर पाठक, ४—भारतवर्ष का इतिहास (प्रथम खण्ड)—ले० श्री० 'मिश्र-बन्धु', ५—राष्ट्र-भाषा—सम्पादक श्री 'भारतीय हृदय', ६—शिवा-बावनी, ७—सरल-पिङ्गल—ले० श्री पुत्तनलाल विद्यार्थी—तथा श्रीलक्ष्मीधर शुक्ल, विशारद, ८—सूर-पदावली (सटिप्पण) सम्पादक—श्री वियोगीहरि, ९—भारतवर्ष का इतिहास (द्वितीय खण्ड)—ले० श्री 'मिश्र-बन्धु', १२—प्रद्य-संग्रह—सम्पादक श्रीब्रजराज एम्० ए०, बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी० तथा श्री गोपालस्वरूप भार्गव एम् एस्० सी०, १३—संक्षिप्त सूरसागर—सम्पादक श्री वियोगीहरि, १४—विहारी-संग्रह—सम्पादक श्री वियोगीहरि, १५—ब्रज-माधुरी-सार—सम्पादक श्री वियोगीहरि, १६—पद्मावत (पूर्वर्द्धि)—सम्पादक 'श्रीलाला भगवान-दीन और १७—सूरदास की विनय-पत्रिका—सम्पादक श्री वियोगीहरि ।

मंत्री,

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,

प्रयाग ।

PS
09 G 50 H



180

52
—
14